

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_I 182653

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. ^H 81.08 Accession No. P.G. H/607

Author N23H

३ नरेशचन्द्र दास स्वामी
हिन्दी पद्य - चिन्ता

This book should be returned on or before the date marked below.

हिन्दी पद्य-विहार

संपादक

नरोत्तमदास स्वामी, एम० ए०



का५।२।३८
सरस्वती प्रेस, बनावस, १९५१
मूल्य १।।)
प्रथम संस्करण १९५१

मुद्रक—रामप्रताप शास्त्री, सम्मेलन मुद्रणालय, प्रयाग

भूमिका

हिन्दी कविता का यह संकलन हाई स्कूल अथवा तत्सदृश परीक्षाओं के लिए तैयार किया गया है। कविताओं का संग्रह काल-क्रम के अनुसार किया गया है। विषयों की विविधता का भी ध्यान रखा गया है। महाकाव्य, खंडकाव्य, गीत-कथा, गीत, प्रगीत, मुक्तक आदि कविता के सभी रूपों को यथासंभव स्थान दिया गया है। कविताएँ कवियों की प्रतिनिधि हों और किशोरावस्था के छात्रों के लिए रुचिकर हों इसका विशेष ध्यान रखा गया है। आशा है कि यह संकलन अध्यापक और अध्येता दोनों को मनोनीत होगा।

संकलन के अंत में कठिन शब्दों एवं दुर्बोध स्थलों को स्पष्ट करनेवाली टिप्पणियाँ तथा कवियों के संक्षिप्त परिचय दिये गये हैं। आशा की जाती है कि इन परिचयों को छात्रों से रटाये जाने का प्रयास नहीं किया जायगा।

जिन कवि महानुभावों की रचनाएँ संकलित की गई हैं उनका संकलनकार हृदय से आभार मानता है।

संकलनकार

सूचनिका

प्रस्तावना	...	९
------------	-----	---

खंड १—प्राचीन पद्य

१. कबीर	...	२१
(१) साखियाँ	...	२२
(२) सबद	..	२४
२. सूरदास	...	२८
गौ-चारण-लीला	...	२९
३. तुलसीदास	...	३६
(१) राम-वनवास	...	३७
(२) दोहे	...	४१
४. नरोत्तमदास	...	४३
मुदामा-चरित	...	४३
५. रहीम	...	५२
दोहे	...	५२
६. केशवदास	...	५७
रावण-अंगद-संवाद	...	५७
७. बिहारी	...	६५
दोहे	...	६५
८. देव	...	६८
(१) बिहार (२) वसंत (३) वर्षा	...	६८-९
(४) यशोदा (५) गोपी और गोपाल	...	७०
(६) शान्तरस	...	७१

खंड २—अर्वाचीन पद्य

९. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	...	७५
(१) प्रात-समीरण	...	७६
(२) प्रबोधिनी	...	७७
१०. श्रीधर पाठक	...	७९
घन-विनय	...	७९
११. अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'	...	८२
(१) माता की ममता	...	८३
(२) कर्मवीर	...	८६
१२. रामचन्द्र शुक्ल	...	८८
(१) बुद्ध का वन-विहार	...	८९
१३. मैथिलीशरण गुप्त	...	९२
(१) कैकेयी का कोप	...	९३
(२) भाग्य का अतीत गौरव	...	९०२
१४. माखनलाल चतुर्वेदी 'एक भारतीय आत्मा'	...	१०७
(१) पुष्प की अभिलाषा	...	१०८
(२) बलिदान	...	१०८
१५. जयशंकर 'प्रसाद'	...	११०
(१) अभियान-गीत	...	१११
(२) महा-प्रलय	...	१११
१६. गोपालशरण सिंह	...	११४
मंत्रांधन	...	११४
१७. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'	...	११६
दान	...	११७

१८. सुमित्रानन्दन पन्त	... १२०
सब मानव मानव हों समान !	... १२१
१९. भगवतीचरण वर्मा	... १२२
भैसागाडी	... १२२
२०. सुभद्राकुमारी चौहान	... १२६
भाँसी की रानी	... १२६
२१. महादेवी वर्मा	... १३३
क्या देखूँ ?	... १३४
२२. हरिवंशराय 'बच्चन'	... १३७
निशा-निमन्त्रण से	... १३७
२३. रामधारीसिंह 'दिनकर'	... १४१
कुरुक्षेत्र से	... १४१
२४. श्यामनारायण पांडेय	... १४४
जौहर	... १४४
टिप्पणियाँ	... १५०

प्रस्तावना

हिन्दी भाषा और साहित्य का संक्षिप्त ऐतिहासिक विवेचन

[१]

हिन्दी भाषा पंजाब और बंगाल तथा हिमालय-पर्वतमाला और विंध्याचल-पर्वतमाला के बीच के विस्तृत भूभाग में बोली जाती है। हिन्दी के कई बड़े विभाग हैं। जिस बोली को पढ़ा-लिखा शिष्ट-समाज काम में लाता है और जिसमें अधिकांश साहित्य लिखा जाता है वह खड़ी बोली कहलाती है। उर्दू खड़ी बोली की ही एक शाखा है जिसमें अरबी-फारसी शब्दों का बाहुल्य रहता है। हिन्दी की अन्य शाखाएँ व्रज, पहाड़ी, अवधी और बिहारी हैं। साहित्य की दृष्टि से व्रज और अवधी विशेष महत्त्वपूर्ण हैं।

व्रज-भाषा मथुरा एवं आगरा के आसपास के भूखंड में बोली जाती है। उसका प्राचीन साहित्य बहुत महत्त्वपूर्ण है। वैष्णव संप्रदाय के कवि-जनों ने इसको अपनाकर इसका खूब प्रचार किया एवं अल्पकाल में ही इसने हिन्दी-साहित्य में एकाधिपत्य जमा लिया। सूरदास, हित हरिवंश, नंददास, नरोत्तमदास, गंग, रसखान, केशवदास, बिहारीलाल, मतिराम, भूषण, देव, घनानन्द, पद्माकर आदि महाकवियों ने अपनी सुमधुर कविता की रचना इसी भाषा में की। गोस्वामी तुलसीदास अवधवासी थे और उन्होंने अपना रामचरितमानस अवधी में लिखा पर उनकी अन्य सर्वश्रेष्ठ रचनाएँ, जैसे विनयपत्रिका, गीतावली, कवितावली आदि व्रज में ही लिखी गई हैं। वर्तमान शताब्दी में खड़ी बोली का प्राधान्य बढ़ा पर व्रज

की महत्ता कम नहीं हो पायी । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने कविता अधिकांश व्रज में ही लिखी । उनके पीछे सत्यनारायण कविरत्न और श्रीधर पाठक व्रज के अच्छे कवि हुए । जगन्नाथदास रत्नाकर, रामचन्द्र शुक्ल और विद्योगी हरि का हिन्दी साहित्य में ऊँचा स्थान है ।

अवधी का क्षेत्र अवध का प्रांत है । कबौर की भाषा में अवधी का बहुत मेल है । उनके पीछे मलिक मुहम्मद जायसी ने अपना पद्मावत अवधी में लिखा । पद्मावत की भाषा ठेठ अवधी है । अवधी के सर्वश्रेष्ठ कवि तुलसीदास हैं । उनका राम-चरित-मानस अवधी में लिखा गया है और उसकी भाषा साहित्यिक अवधी है ।

खड़ी बोली हिन्दी की सर्वप्रधान शाखा है । इससे मिलती-जुलती भाषा मेरठ और दिल्ली के आसपास बोली जाती है पर प्रधानतया यह साहित्य की एवं व्यवहार की भाषा है । यह थोड़ी बहुत समस्त उत्तरी भारत में समझी जाती है । यही भारतवर्ष की राष्ट्र-भाषा है । मुसलमानों ने दिल्ली पर आधिपत्य प्राप्त करने के पश्चात् यहाँ के लोगों से व्यवहार करने के लिए इसको अपनाया और उनके साथ यह समस्त भारतवर्ष में फैल गयी । मुसलमान इसमें साहित्य-रचना भी करने लगे । बलबन और अलाउद्दीन का दरबारी कवि अमीर खुसरो खड़ी बोली के प्राचीन कवियों में सबसे अधिक महत्त्वशाली है । पीछे मुसलमान लोग अपनी रचनाओं में अरबी-फारसी के शब्दों, प्रयोगों और भावों को भरने लगे जिससे उर्दू नामक नयी भाषा बन गयी । हिन्दू लोगों ने पहले खड़ी बोली की ओर ध्यान नहीं दिया । विक्रम की १८ वीं शताब्दी में शीतल कवि ने खड़ी बोली में अच्छी कविता की । उन्नीसवीं शती में मुंशी सदासुख और इंशाअल्लाह खाँ खड़ी बोली के गद्य-लेखक हुए । इस समय अंग्रेजों का राज्य भारतवर्ष में जम गया था । उन्हें भी यहाँ के लोगों से व्यवहार करने लिए एक देशभाषा की आवश्यकता हुई और उन्होंने खड़ी बोली को अपनाया क्योंकि इसका प्रचार थोड़ा-बहुत

सारे देश में था । उनके आश्रय में सदल मिश्र और लल्लूलाल ने गद्य की पुस्तकें लिखीं । खड़ीबोली के उर्दू रूप को भी अंग्रेजों से आश्रय मिला । बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में राजा शिवप्रसाद सितारे-हिन्द हुए । उन्होंने खड़ी बोली के गद्य में नवीन ढंग की पुस्तकें लिखीं । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने हिन्दी साहित्य में युग-परिवर्तन उपस्थित कर दिया । उन्होंने गद्य-पद्य की अनेक पुस्तकें लिखकर हिन्दी भाषा को एक निश्चित रूप दिया । अब वह वेग से उन्नति की ओर अग्रसर हुई । वह अब गद्य की एकमात्र भाषा हो गयी । भारतेन्दु के पश्चात् प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, बाल-मुकुन्द गुप्त, महावीरप्रसाद द्विवेदी, जयशंकर प्रसाद, प्रेमचन्द, रामचन्द्र शुक्ल आदि धुरंधर गद्य-लेखक हुए । पद्य में बहुत समय तक व्रजभाषा का ही सिक्का जमा हुआ था । महावीरप्रसाद द्विवेदी, नाथूराम शंकर शर्मा, श्रीधर पाठक, अयोध्यासिंह उपाध्याय आदि ने खड़ी बोली में सफलतापूर्वक कविता करके कविता-क्षेत्र में खड़ी बोली का पूरी तरह प्रवेश करा दिया और मैथिलीशरण गुप्त ने इसमें अपनी भारती गुंजाकर इसे सर्व-प्रिय बना दिया । परन्तु लोगों को खड़ी बोली की कर्कशता एवं कर्णकटुता बहुत खटकती थी । आधुनिक कवि सुमित्रानन्दन पन्त, सियारामशरण गुप्त आदि ने इस दोष को भी बहुत कुछ दूर कर दिया है और अब कविता में भी खड़ी बोली प्राधान्य प्राप्त कर चुकी है ।

[२]

हिन्दी का उत्पत्तिकाल सं० ११०० के लगभग माना जाता है । उस समय तक अपभ्रंश भाषा का प्रचार था । उसी से धीरे धीरे हिन्दी की विभिन्न शाखाओं का विकास हुआ । हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास को चार भागों में विभक्त किया जाता है—

- (१) आदि-काल या वीरगाथा-युग संवत् ११०० से १४०० तक
- (२) पूर्व-मध्यकाल या भक्ति-युग संवत् १४०० से १७०० तक

(३) उत्तर मध्य-काल या रीति-युग संवत् १७०० से १९०० तक

(४) आधुनिक काल या गद्य-युग संवत् १९०० से अब तक ।

आदिकाल में हिन्दी का विकास आरंभ हुआ था । इस काल की भाषा बहुत समय तक अपभ्रंश शब्दों से मिश्रित रही और साधारणतया राजस्थानी का प्राधान्य रहा । इस समय का साहित्य मुख्यतया वीर-रसात्मक है । चंद नामक महाकवि इस काल में हुआ । उसने पृथ्वीराज-रासो नामक ग्रंथ बनाया । जगनिक नामक एक अन्य कवि ने आल्हखंड की रचना की । अमीर खुसरो ने खड़ी बोली में पहेलियाँ, मुकरियाँ, दो-सखुने आदि लिखे ।

पूर्वमध्यकाल भक्ति-युग है । इस काल में व्रज और अवधी ने हिन्दी साहित्य में प्रधानता प्राप्त की और उर्दू का स्वतन्त्र विकास होने लगा । साहित्य में भक्ति की प्रधानता रही । भक्त-कवियों के दो विभाग किये जाते हैं—

१. निर्गुणोपासक—इनके दो भेद हैं—

(१) वेदान्ती निर्गुणोपासक भक्त—कबीर इस संप्रदाय के सबसे बड़े कवि हैं । इस संप्रदाय के अन्य कवि रैदास, नानक, दादू आदि हैं । ये लोग निर्गुण और निराकार परमात्मा की उपासना का उपदेश देते थे और मूर्तिपूजा आदि बाहरी आडम्बरों का विरोध करते थे । भारतीय जनता में जातिगत ऊँच-नीच के भावों को दूर करने में इनकी वाणी ने बड़ा काम किया ।

(२) प्रेममार्गी निर्गुणोपासक भक्त—इस संप्रदाय के प्रायः सभी कवि मुसलमान हैं । उनमें सबसे बड़े मलिक मुहम्मद जायसी थे । इन लोगों ने आख्यान-काव्य लिखे और लौकिक प्रेम द्वारा परमात्मा के प्रेम का दिग्दर्शन कराने का प्रयत्न किया ।

२. सगुणोपासक—इनके भी दो भेद हैं—

(१) राम-शाखा के सगुणोपासक भक्त—ये सगुण और साकार परमात्मा की उपासना करनेवाले थे एवं राम के रूप में परमात्मा की आराधना करते थे। इस शाखा के सब से बड़े कवि तुलसीदास हैं जो हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कवि माने जाते हैं।

(२) कृष्ण-शाखा के सगुणोपासक कवि—ये कृष्ण के रूप में सगुण परमात्मा की उपासना करनेवाले थे। सूरदास, हित हरिवंश, मीराँ बाई आदि इस शाखा के प्रधान कवि हैं : इन कवियों ने कृष्ण चरित्र पर काव्य-रचना की है।

यह काल हिन्दी साहित्य का स्वर्ण-युग समझा जाता है। उपर्युक्त महाकवियों के अतिरिक्त केशवदास, गंग, नरोत्तमदास, रहम, रसखान आदि उत्कृष्ट कवि इसी काल में हुए। केशवदास रीति के सबसे पहले कवि हैं।

उत्तर मध्यकाल रीति-युग है। इस काल में भी व्रज-भाषा की प्रधानता रही। उसके अन्त में खड़ी बोली ने साहित्य-क्षेत्र में प्रवेश किया। अलंकार, रस आदि साहित्य के विविध अंगों का ध्यान रखते हुए इस काल की रचनाएँ हुईं। शृंगार काव्य की प्रधानता रही। इस काल का सबसे बड़ा कवि बिहारीलाल है। उसकी बिहारी-सतसई बड़ा प्रसिद्ध काव्य है। मतिराम, देव और पद्माकर आदि महत्वपूर्ण कवि इसी काल में हुए। भूषण ने सबसे अलग अपनी वीर-वाणी का गुंजार किया। पीछे लाऊ और सूदन ने भी भूषण का अनुसरण किया। मुंशी सदासुख ने खड़ी बोली के गद्य में भागवत का अनुवाद सुखसागर नाम से किया और इंशाअल्लाह खाँ ने रानी केतकी की कहानी उसी बोली में लिखी। अंग्रेजों के आश्रय में रहकर लल्लूलाल ने प्रेमसागर और सदल मिश्र ने नासिकेतोपाख्यान लिखा। इस प्रकार गद्य की नींव पड़ी।

आधुनिक काल को गद्य-युग कहते हैं। इसमें गद्य की प्रधानता रही।

व्रजभाषा धीरे-धीरे पीछे पड़ने लगी और खड़ी बोली की प्रधानता बढ़ने लगी। गद्य में तो उसने एकाधिकार स्थापित कर लिया। अंग्रेजी राज्य स्थापित हो जाने से पश्चिमी सभ्यता का प्रभाव पड़ने लगा। गद्य का प्रसार बढ़ा और विषय-विस्तार हुआ। नाना विषयों पर पुस्तक-रचना होने लगी। राजा शिवप्रसाद सितारे-हिन्द और राजा लक्ष्मणसिंह इस काल के आरंभिक लेखक हैं। इनके पीछे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आते हैं। ये वर्तमान हिन्दी के निर्माता कहे जाते हैं। इन्होंने विविध विषयक पुस्तकें लिखीं एवं कई पत्र-पत्रिकाओं को जन्म दिया। इनकी नाटकावली बहुत प्रसिद्ध है। इनके पश्चात् प्रतापनारायण मिश्र और बालकृष्ण भट्ट आते हैं। मिश्रजी कवि और गद्य लेखक थे और भट्टजी गद्य लेखक। दोनों का गद्य उत्कृष्ट कोटि का है। इनके साथ हम बालमुकुन्द गुप्त को भी रख सकते हैं।

उनके पश्चात् पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी और 'सरस्वती' का जमाना आता है। भारतेन्दु के बाद महावीरप्रसाद द्विवेदी का नाम सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। भाषा को स्थिर करने में, तथा शैली को परिष्कृत एवं व्याकरण-सम्मत बनाने में, उन्होंने बहुत कार्य किया। ये उच्चकोटि के समालोचक एवं गद्य-लेखक थे। कोई २० वर्ष तक उन्होंने 'सरस्वती' का संपादन किया। कविता-क्षेत्र में खड़ीबोली का प्रवेश कराने में उन्होंने बहुत प्रयत्न किया। खड़ीबोली के प्रसिद्ध कवि मैथिलीशरण गुप्त उनके शिष्य एवं अनुयायी हैं। इसी काल में नाथूराम शंकर शर्मा, श्रीधर पाठक और अयोध्यासिंह उपाध्याय बड़े कवि हुए। उपाध्यायजी का 'प्रियप्रवास' वर्तमान हिन्दी का सर्वप्रथम महाकाव्य है। इसी समय से कुछ ही पूर्व बाबू श्यामसुन्दरदास आदि ने नागरी-प्रचारिणी-सभा स्थापित की। इस सभा ने हिन्दी की बहुत सेवा की। उसने हिन्दी को अदालतों में स्थान दिलवाया एवं कई अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रंथ प्रकाशित करवाये जिनमें हिन्दी-शब्द-सागर नामक एक बृहत् कोष भी है। हिन्दी भाषा और साहित्य के

निर्माण में द्विवेदीजी ने जो कार्य किया वही उसके प्रचार एवं परिवर्धन के लिए बाबू श्यामसुन्दरदास ने किया। इस काल में मिश्रबन्धुओं ने हिन्दी कवियों का खोजपूर्ण विस्तृत विवरण लिखा और पद्मसिंह शर्मा ने तुलनात्मक समालोचना का सूत्रपात किया।

अब हम हिन्दी के नवीन युग की ओर आते हैं। अब व्रजभाषा का स्थान खड़ी बोली ने पूरी तरह से ले लिया है। जगन्नाथदास रत्नाकर एवं वियोगी हरि आदि दो एक सज्जन अब भी हमें व्रज के गौरव का स्मरण दिलाते हैं परन्तु उसकी प्रधानता नष्ट हो गयी है। कविता, गद्य, समालोचना आदि विषयों में नवीनता आ गयी है। मैथिलीशरण गुप्त पुराने युग के कवि हैं जो नवीन युग के कर्णधारों में भी स्थान ग्रहण किए हुए हैं। उन्होंने खड़ी बोली को जनप्रिय बनाने में बहुत कार्य किया।

इस नवीन युग को दो भागों में बाँटा जा सकता है--(१) छायावाद-युग और (२) प्रगतिवाद-युग।

छायावाद-काल में कविता की शैली बदली। भाषा, छंद, अलंकार, व्यंजना सब में नवीनता आयी। कल्पना को खुला क्षेत्र मिला। कवियों के कल्पना-जगत में पदार्थों के अनेक सुन्दर-सुन्दर चित्र अंकित होने लगे। अचेतन पदार्थ भी उनके लिए सचेतन हो गए। चमकते हुए तारे उन्हें हँसते हुये जान पड़ने लगे।

इस काल के सब से बड़े लेखक जयशंकर 'प्रसाद' और प्रेमचंद हैं। प्रसाद कवि, नाटक-कार, उपन्यासकार, कहानी-लेखक, निबंध-लेखक सभी कुछ थे। सभी में उनका श्रेष्ठ स्थान था। उन्होंने हिन्दी में छायावाद और अनुकान्त कविता का सूत्रपात किया। प्रेमचंद ने उपन्यास और कहानी के क्षेत्रों में युगान्तर उपस्थित किया। इन क्षेत्रों के वे अद्वितीय लेखक थे। गद्य-लेखकों में उनके जैसी लोकप्रियता किसी को नहीं मिली। अ-हिन्दी-

भाषा-भाषियों में भी वे बहुत लोक-प्रिय हुए और उनकी रचनाओं के भाषान्तर भारत की प्रायः सभी भाषाओं में हुए।

प्रगति-काल यथार्थवाद का काल है। लेखक कल्पना-जगत् को छोड़ कर ठोस धरती पर उतर आये। साहित्य में पीड़ित प्रजा, शोषित किसान और दलित मजदूर के चित्र अंकित किये जाने लगे। वह जन-जीवन के अधिक निकट आने लगा। साम्यवाद और रूसी साहित्य का प्रभाव पड़ा। साहित्य के विविध अंगों का द्रुत गति से विकास हो चला। नयी-नयी मौलिक शैलियों के दर्शन हुए।

इस तृतीय युग के कुछ प्रमुख लेखकों के नाम ये हैं—

कवि—प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी वर्मा, भगवतीचरण वर्मा, सुभद्राकुमारी, बच्चन, गुरुभक्तसिंह, रामधारीसिंह 'दिनकर', श्यामनारायण पांडेय, अयोध्यासिंह उपाध्याय, मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त, गोपालशरणसिंह, माखनलाल चतुर्वेदी आदि।

आलोचक—रामचंद्र शुक्ल, हजारीप्रसाद द्विवेदी, गुलाबराय, शांतिप्रिय द्विवेदी, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, जगन्नाथप्रसाद शर्मा, प्रकाशचंद्र गुप्त, रामविलास शर्मा, शिवदानसिंह चौहान आदि।

नाटककार—प्रसाद, लक्ष्मीनारायण मिश्र, गोविंददास, हरिकृष्ण प्रेमी, उदयशंकर भट्ट, रामकुमार वर्मा, उपेन्द्रनाथ अशक आदि।

उपन्यास और कहानी-लेखक—प्रसाद, प्रेमचंद, सुदर्शन, कौशिक, उग्र, राय कृष्णदास, जैनेन्द्रकुमार, इलाचंद्र जोशी, वृन्दावन-लाल वर्मा, चतुरसेन शास्त्री, यशपाल, उपेन्द्रनाथ अशक आदि।

गद्य-लेखक—महादेवी वर्मा, वियोगी हरि, बनारसीदास चतुर्वेदी,
गुलाबराय, रामनाथ सुमन, राहुल सांकृत्यायन, रघुबीर
सिंह, हजारीप्रसाद द्विवेदी आदि ।

स्वातन्त्र्य-प्राप्ति के साथ हिंदी भारतवर्ष की राष्ट्रभाषा स्वीकृत हो
चुकी है । उसका भविष्य अत्यन्त उज्ज्वल है । शीघ्र ही संसार की
महत्त्वपूर्ण भाषाओं में उसका स्थान होगा ।

खण्ड १

प्राचीन पत्र

कबीर

कबीर मुसलमान जुलाहे थे। उनका समय विक्रम की पंद्रहवीं-सोलहवीं शताब्दी है। उनका जन्म बस्ती जिले के मगहर नामक स्थान में हुआ था। उनके पिता का नाम नीरू तथा माता का नाम नीमां था। उनकी बाल्यावस्था में ही नीरू सपरिवार काशी चला आया था। इस प्रकार उनका बचपन काशी में बीता। बड़े होने पर वे सुप्रसिद्ध महात्मा स्वामी रामानंद के संपर्क में आये और उनके शिष्य हो गये। वे पढ़े-लिखे नहीं थे पर सत्संग के द्वारा धर्म के गूढ़ रहस्यों को उनमें भली-भाँति समझ लिया था। उनमें दूर-दूर तक देशाटन भी किया था। वे एक अनुभवी और पहुँचे हुये संत थे।

निर्गुण संत कवियों में कबीर का स्थान सबसे ऊँचा है। भारतीय जनता के जीवन पर जितना प्रभाव कबीर का पड़ा उतना तुलसी को छोड़कर और किसी कवि का नहीं पड़ा। उनके भजनों का प्रचार क्या साक्षर और क्या निरक्षर सभी में समान रूप से है।

कबीर सब धर्मों की एकता के समर्थक थे। राम और रहीम की एकता बताकर उनमें हिन्दुओं और मुसलमानों के धार्मिक विद्वेष को दूर करने का प्रयत्न किया। धर्म के मिथ्या-विश्वासों और बाह्याडंबरों का उनमें जोरदार शब्दों में विरोध किया। जाति-गत ऊँच-नीच के भावों को कम करने में उनकी वाणी ने बहुत काम किया।

कबीर की वाणी के तीन विभाग हैं—(१) साखियाँ जो अधिकांश दोहों में हैं, (२) सबद जो पदों के रूप में हैं, और (३) रमैनी जो दोहे-चौपाइयों में हैं।

कबीर की वाणी में सच्चे हृदय से कही हुई बातें हैं जो अनायास दिल में घर कर लेती हैं। उनके कहने का ढंग ओजपूर्ण है और सुबोध भी। उनकी अन्योक्तियाँ बड़ी ही भावपूर्ण हैं।

(१) साखी

सत-गुर समा न को सगा, सोधी समी न दाति ।
हरिजी समा न को हितू, हरि-जन समी न जाति ॥१॥
तेरा साईं तुज्झ में, ज्यों पुहपन में वास ।
कस्तूरी के मिरग ज्यों, फिरि-फिरि सूँघै घास ॥२॥
कस्तूरी कुंडल बसै, मृग ढूँढ़ै वन माहि ।
ऐसे घट-घट राम है, दुनिया देखै नाहि ॥३॥
एक अचंभा देखिया, हीरा हाट विकाइ ।
परखणहारै बाहिरा, कौड़ी बदलै जाइ ॥४॥
कबीर, लहर समंद की, मोती बिखरे आइ ।
वगुला मंझ न जाणई, हंस चुणे-चुणि खाइ ॥५॥
चंदण गया विदेसई, जण-जण कहै पलास ।
ज्यों-ज्यों चूल्है भोँकिया, त्यों-त्यों अधिकी वास ॥६॥
संत न छांडै संतई, कोटिक मिलै अ-संत ।
चंदण भुवंगां वेढ़िया, सीतलता न तजंत ॥७॥
साधू ऐसा चाहिए, दुखै-दुखावै नाहि ।
फल-फूलनि छेड़ै नहीं, बसै बगीचा माहि ॥८॥
जेती देखीं आतमा, तेता सालगराम ।
साधू परतख देव हैं, नहि पाथर सुँ काम ॥९॥

बांबी कूटै बाबरा, सरप न मारचा जाइ ।
 मूरख ! बांबी ना डसै, सरपं सबन कूं खाइ ॥१०॥
 राज-दुवारै संत जन, तीन बसत को जाइ ।
 कै मीठा, कै मान को, कै माया की चाइ ॥११॥
 कबीर, माया मोहनी, मांगी मिलै न हाथ ।
 मनह उतारी भूठ करि, लागी डोलै साथ ॥१२॥
 माया तजी त क्या भया, मान तजा नहि जाइ ।
 मान बड़े मुनियर गिले, मान सबन को खाइ ॥१३॥
 चीटी चावल ले चली, विच में मिल गयी दार ।
 कह कबीर, दोउ ना मिलै, एक ले, दूजी डार ॥१४॥
 आछे दिन पाछे गये, हरि मों किया न हेत ।
 अब पछिताये होइ का, चिड़ियाँ चुग गई खेत ॥१५॥
 एकै साधे सब सधै, सब साधे सब जाइ ।
 जे तूं सीचै मूल को, फूलै-फलै अघाइ ॥१६॥
 कबिरा, कहा गरबियो, ऊँचे देखि अवास ।
 कालह-परघ्यों भुईं लेटना, ऊपर जामै घास ॥१७॥
 यह ऐसा संसार है, जैसा सेमल-फूल ।
 दिन दस के व्यौहार को, भूठे रंग न भूल ॥१८॥
 चलती चक्की देख कर, दिया कबीरा रोइ ।
 दो पाटन के बीच में, साबित बचा न कोइ ॥१९॥
 मनिखा-जनम दुलभ है, देह न बारंबार ।
 तरवर तैं फल भड़ पड़्या, बहुरि न लागै डार ॥२०॥

पान भड़तां यू कह्यौ, सुणि तरवर वण-राइ ।
 अब के बिछुड़े ना मिलें, दूरि पड़ेंगे जाइ ॥२१॥
 थली चरतै मिरगलै, बींध्या एक ज सौण ।
 हम तो पंथी पंथ सिर, हरया चरैगा कौण ? ॥२२॥
 आहेड़ी दब लाइया, मिरग पुकारे रोइ ।
 जा वन में क्रीड़ा करी, दाभत है वन सोइ ॥२३॥
 कबीर, हरिणी दूबली, इस हरियालै तालि ।
 लक्ख अहेड़ी, एक जिव, कितीक टालें भालि ॥२४॥
 माली आवत देखि करि, कलियन करी पुकारि ।
 फूले-फूले बिन लिये, काल्ह हमारी बारि ॥२५॥
 कबीर, खेत किसान का, मिरगनि खाया झाड़ि ।
 खेत बिचारा क्या करै, खसम न करई बाड़ि ॥२६॥
 कर बहियां बल आपणी, छाँड़ि बिरानी आस ।
 जाके आंगन है नदी, सो कत मरत पियास ? ॥२७॥

(२) सबद

(१)

हरिजन हंस-दसा लिये डोलैं ।
 निरमल नांव चवैं, जस बोलैं ॥
 मानसरोवर-तट के वासी ।
 राम-चरण चित, आन-उदासी ॥१॥
 मुगताहल बिन चंच न लावैं ।
 मीन गहैं कै हरि-गन गावैं ॥२॥

कड़वा कुबुधि निकटि नहि आवै ।
 सो हंसा निज-दरसन पावै ॥३॥
 कहै कबीर, सोई जन तेरा ।
 खीर-नीर का करै निबेरा ॥४॥

(२)

बागड़ देस लूवन का घर है ।
 तहाँ जिनि जाइ, दाभन का डर है ॥
 सब जग देखौं, कोइ न धीरा ।
 परत धूरि सिरि, कहत अबीरा ॥१॥
 न तहाँ सरवर, न तहाँ पाणी ।
 न तहाँ सतगुर, साधू-बाणी ॥२॥
 न तहाँ कोकिल, न तहाँ सूवा ॥
 ऊँचे चढ़ि-चढ़ि हंसा मूवा ॥३॥
 देस मालवा गहिर गँभीर ।
 डग-डग रौटी, पग-पग नीर ॥४॥
 कहै कबीर, घर ही मन माना ।
 गूंगे का गुड़ गूंगै जाना ॥५॥

(३)

हरि-गुन सुमिरि, रे नर प्राणी ।
 जतन करंत पतन व्है जैहै, भावें जाण म जाणी ॥
 छीलर नीर रहै धौं कैसैं, को सुपिनैं सचु पावै ?
 सूकित पान परत तरवर थैं, उलटि न तरवरि आवै ॥१॥

जल-थल जिव डहके इन माया, कोइ जन उबरि न पावै ।
राम-अधार कहत है जुगि-जुगि, दास कबीरा गावै ॥२॥

(४)

जल बिच मीन पियासी !
मोहि सुनि-सुनि आवत हाँसी ॥
घर में वसत धरी नहिं सूझै, बाहर खोजन जासी ।
अंग की नाभि माँहि कसतूरी, वन-वन फिरत उदासी ॥१॥
आत्म-न्यान बिना सब मूना, क्या मथुरा, क्या कासी ।
कहत कबीर, सुनौ भई साधौ, सहज मिलै अबिनासी ॥२॥

(५)

जतन विनि मिरगनि खेत उजारे ।
टारे टरत नहीं निसि-वासर, बिडरत नाँहि बिडारे ॥
अपने-अपने रस के लोभी, करतब न्यारे-न्यारे ।
अति अभिमान बढत नहिं काहू, बहुत लोग पचि हारे ॥१॥
बुधि मेरी किरषी, गुरु मेरो बिभुका, आक्खर दोइ रखवारे ।
कहै कबीर, अब खान न दैहौ, बरियो भली सँभारे ॥२॥

(६)

पंडित वाद बढते झूठा ।
राम कह्यौ दुनिया गति पावै, खाँड़ कह्यौ मुख मीठा ॥
पावक कह्यौ पाँव जे दाझै, जल कहि त्रिखा बुझाई ।
भोजन कह्यौ भूख जे भाजै, तौ सब कोइ तिरि जाई ॥१॥

नर कै साथि मुवा हरि बोलै, हरि-परताप न जानै ।
जो कबहूँ उड़ि जाइ जंगल मै, बहुरि न सुरतै आनै ॥२॥
माची प्रीत विषय-माया सू, हरि-भगतनि मूं ह्राँसी ।
कहै कबीर, प्रेम नाह उपज्यौ, बाँध्यौ जमपुर जासी ॥३॥

(७)

संतो ! देखहु, जग बोराना
साँच कहौ तौ मारन धावै, भूठै जग पतियाना ।
नेमी देखे, धरमी देखे, प्रात करहिं असनाना ।
आतम मारि पखानहिं पूजै, उनमैं कछु न ग्याना ।
आमन मारि डिभ धरि बैठे, मन में बहुत गुमाना ।
माखी-सबदै गावत भूले, आतम-खबरि न जाना ।
कह हिंदू, मोहि राम पियारा, तुरक कहै रहिमाना ।
आपस में दोउ लड़ि-लड़ि मूए, मरम न काहू जाना ।
कहत कबीर, सुनौ हो संतो ! ई सब भरम भुलाना ।
केतिक कहौ, कहा नहिं मानै, आपहिं आप समाना ।

सूरदास

सूरदास महाकवि चंद बरदायी के वंशज और जाति के ब्रह्मभट्ट थे। उनका जन्म सं० १५३५ के लगभग और देहांत सं० १६४० के लगभग हुआ था। वे पहले वैरागी थे और आगरा से मथुरा जानेवाली सड़क पर स्थित गऊघाट पर रहते थे। पीछे महाप्रभु बल्लभाचार्य के शिष्य हुए। सम्राट् अकबर ने उनका नाम सुनकर उन्हें अपने दरबार में बुलाया था।

सूरदास अपने उपास्यदेव भगवान् कृष्ण की स्तुति में नित्यप्रति भजन बनाकर गाया करते थे। इन्हीं भजनों का संग्रह सूरसागर है। कहते हैं कि सूरसागर में सवा लाख पद थे पर इस समय छै-सात हजार से अधिक नहीं मिलते। सूरसागर की रचना भागवत पुराण के आधार पर हुई है और उसमें भगवान् कृष्ण की लीलाएँ वर्णित हैं पर वह भागवत का अनुवाद नहीं है, और न वह भागवत की भाँति कथा-काव्य है। उसमें कृष्ण के जीवन के अत्यन्त मार्मिक अंशों को लेकर भाव-पूर्ण चित्र अंकित किये गये हैं। मुख्यतया बाल-लीला, प्रेम-लीला, मथुरा-गमन और गोपी-विरह का वर्णन किया गया है। आरंभ में भक्ति-संबंधी बहुत से पद भी हैं।

सूरसागर एक सुंदर गीत-काव्य है। कबीर और मीराँ के भजनों की भाँति सूर के पदों का भी बहुत प्रचार हुआ। व्रजभाषा की प्रारंभिक रचना होने पर भी उसमें भाषा की अपूर्व प्रौढ़ता मिलती है। व्रजभाषा जो एक प्रादेशिक बोली से उत्तराखंड की सर्व-प्रधान साहित्यिक भाषा बन गयी इसका श्रेय बहुत-कुछ सूरदास को ही है।

गोस्वामी तुलसीदास के पीछे सूरदास हिंदी के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। शुद्ध काव्य की दृष्टि से देखा जाय तो उनका स्थान तुलसी से कम नहीं

किंतु कुछ बढ़कर ही जान पड़ेगा। उनकी कविता का क्षेत्र तुलसी की कविता के क्षेत्र की तुलना में परिमित है। उनसे केवल वात्सल्य और प्रेम का वर्णन किया है, तुलसी ने जीवन के सभी अंगों को छुआ है।

वात्सल्य और प्रेम के सूरदास सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। बाल-जीवन का ऐसा मार्मिक वर्णन करनेवाला कवि दूसरा कोई नहीं हुआ। साथ ही माता के स्नेहपूर्ण हृदय का चित्रण भी बड़ा मार्मिक हुआ है।

भाषा प्रसंगानुसार कहीं अलंकारों से लदी हुई है तो कहीं बिल्कुल सादगी लिए हुए। वर्णन-प्रधान स्थानों की भाषा अलंकार-पूर्ण है और भावपूर्ण स्थलों की सरल और सहज।

गौ-चारण-लीला

(१)

आजु हौं गाइ चरावन जेही
वृन्दावन के भाँति-भाँति फल अपने कर हौं खेहो
ऐसी बात कहौ जनि, वारे ! देखो अपनी भाँति
तनक-तनक पग चलिहो कैमे, आवत ह्वैहै राति
प्रात जात गइया ले चारन, घर आवत हैं साँभ
तुम्हरो कमल-वदन कुम्हिलैहै रेंगत घामहि माँभ
तेरी सौं, मोहि घाम न लागत, भूख नहीं कछु नेक
सूरदास, प्रभु कह्यौ न मानत, परचौ आपनी टेक

(२)

मइया ! हौं गाय चरावन जेही
तू कहि महर नंद बाबा सौं, बड़ो भयो, न डरैहौं

रैता, पैता, मना, मनसुखा, हलधर सँगहि रैहीं
बँसीवट तर ग्वालनि के संग खेलत अति सुख पैहीं
ओदन भोजन दे दधि कांवरि भूख लगे तँ खैहीं
सूरदास है साखि जमुन-जल सोह देहु जु नहैहीं

(३)

चले सब गाइ चरावन ग्वाल
हेरी टेर सुनत लरिकनि के दौरि गये गोपाल
फिरि इत-उत जसुमति जौ देखै, दृष्टि न परे कन्हारै
जान्यौ जात ग्वाल मंग दोरयो, टेरति जसुमति धारै
जात चलयौ गइयन के पाछे, बलदाऊ कहि टेरत
पाछें आवति जननी देखी, फिरि-फिरि इत कौ हेरत
बल देख्यौ मोहन कौ आवत, सखा किये सब ठाढ़े
पहुँची आइ जसोदा रिस भरि, दोउ भुज पकरे गाढ़े
हलधर कह्यौ, जान दै मो मंग, आवहिं आज सवारे
सूरदास बल सौं कह जसुमति, देखे रहियौ प्यारे !

(४)

वृन्दावन देख्यौ नंद-नंदन अतिहि परम सुख पायौ
जहँ-जहँ गाइ चरति, ग्वालनि संग तहँ-तहँ आपुन धायौ
बलदाऊ ! मो कौं जनि छाँड़ौ, संग तुम्हारै ऐहीं
कैसेहु आज जसोदा छाँड़्यौ, काल्हि न आवन पैहीं
सोवत मो कौं टेरि लेहुगे, बाबा नंद-दुहाई
सूर, स्याम बिनती कर बल सौ सखनि समेत सुनाई

(५)

जसुमति दौरि लिये हरि कनियाँ
 आजु गयी मेरौ गाइ चरावन, हौं बलि जाउँ निछनियाँ
 मो कारन कछु आन्यौ है, बलि ? वन-फल तोरि नन्हइया !
 तुमहि मिले मैं अति सुख पायौ, मेरे कुंवर कन्हइया !
 कछुक खाहु जौ भावै मोहन ! दै री माखन-रोटी
 सूरदास, प्रभु जीवहु जुग-जुग हरि-हलधर की जोटी

(६)

मैं अपनी सब गाइ चरैहौं
 प्रात होत बल के संग जैहौं, तेरे कहे न रैहौं
 ग्वाल-बाल गाइन के भीतर, नेकहु डर नहि लागत
 आजु न सोवौं, नंद-दुहाई, रात रहौंगो जागत
 और ग्वाल सब गाइ चरैहैं, हौ घर बैठी रैहौ !
 सूर, स्याम ! तुम सोइ रहौ अब, प्रात जान हौं दैहौ

(७)

करत कलेरु कान्हु पियारे
 माखन रोटी दियौ हाथ पर, बलि-बलि जाहुं जु खाहु लला रे !
 टेरेत ग्वाल द्वार है ठाढे, आये तब के, होत अवारे
 खेलहु जाइ घोस के भीतर, दूर कहूं जनि जइयहु बारे !
 टेरे उठे बलराम स्याम कौं, आवहु जाहि धेनु वन चारे
 सूर, स्याम कर जोरि मातु सौं गाइ चरावन कहत हहा रे !

(८)

अति आनंद भये हरि धाये
 टेरेत ग्वाल-बाल सब आवहु, भइया मोहि पठाये
 उत तैं सखा हँसत सब आवत, चलहु कान्ह ! वन देखहि
 वन-माला तुम कौ पहिरावहि, धातु-चित्र तन रेखाहि
 गाइ लयीं सब घेरि घरनि तैं, महर गोप के बालक
 सूर, स्याम चले गाइ चरावन कंस-उरहि के मालक

(९)

टेरेत हैं सब ग्वाल कन्हइया ! आवहु, बेर भयी
 आवहु बेगि, विलम जनि लावहु, गइयाँ दूरि गयीं
 यह सुनतहि दोऊ उठि धाये, कछु अंचयौ, कछु नाहीं
 कितिक दूर सुरभी तुम छाँड़ी, वन तो पहुँची आहीं ?
 ग्वाल कह्यौ, कछु पहुँची ह्वैहैं, कछु मिलिहैं मग माही
 सूरदास, बल-मोहन भइया गइयन पूछत जाही

(१०)

वन पहुँचत सुरभी लयीं धाई
 जैहौ कहाँ, सखनि को टेरेत हलधर संग कन्हई
 जेंवत परखि लियौ नहिं हमकौं, तुम अति करी चंडाई
 अब हम जैहैं दूरि चरावन, तुम मंग रहै बलाई
 यह सुनि ग्वाल धाइ तहैं आये, स्यामहि अंकम लाई
 सखा कहत सब नंद-सुवन सों, तुम सब के सुखदाई
 आजु चलौ वृन्दावन जैयै, गइयाँ चरैं अधाई
 सूरदास, प्रभु सुनि हरखित भये, घर तैं छाक मंगाई

[३३]

(११)

आजु चरावन गाइ चली जू, कान्ह ! कुमुद-वन जइयें
सीतल कुँज कदंब की छहियाँ छाक छहूँ रस खइयें
अपनी-अपनी गाइ ग्वाल सब आनि करी इक ठीरी
घौरी धूमरि राती रौंछी बोल बुलाइ चिन्हौरी
बाबा नंद बुरी मानेंगे और जसोदा मइया
सूरज दास, जनाइ दियो है यह कहि कै बल भइया

(१२)

चरावत बृन्दावन हरि धैन
बाल-सखा सब सँग लगाये खेलत हैं करि चैन
कोउ गावत, कोउ मुरलि बजावत, कोउ बिखान, कोउ बैन
कोउ निरतत, कोउ उघटि ताल दै, जुरी ब्रज-बालक-सैन
त्रिविध पवन जहँ बहत सु निसि दिन, सुभग कुंज धन ऐन
मूर, स्याम निज धाम बिसारत, आवत यह सुख लैन

(१३)

गिरि पर चढ़ि गिरि-वर-धर टेरे
अहो सुबल श्रीदामा भइया ! ल्यावहु गाइ खरिक के नेरे
आयी छाक, अबार भयी है, नैसुक धइया पियेहु सबेरे
सूरदास, प्रभु बैठि सिलनि परि भोजन करें ग्वाल चहुँ फेरे

(१४)

आयी छाक, बुलाये स्याम
यह सुनि सखा सबै जुरि आये सुबल, सुदामा अरु श्रीदाम

कमल-पत्र दोना पलास के सब आगै धरि परसत जात
ग्वाल-मंडली मध्य स्याम-घन, सब मिलि भोजन रुचि करि खात

ऐसी भूख माँझ यह भोजन पठै दियौ करि जसुमति मात
सूर, स्याम अपनो नहि जँवत, ग्वालनि कर तै लै-लै खात

(१५)

जँवत छाक गाइ बिसरायी
सखा सुदामा कहत सबनि साँ, छाकहि में तुम रहे भुलायी
धेनु नहीं देखियत कोउ नियरे, भोजन ही में साँझ लगायी
सुरभि काज तहँ-तहँ उठि धाये, आपु तहाँ उठि चले कन्हाई
सूरदास प्रभु कहत, चलौ घर, वन में आजु अवार लगायी

(१६)

छबीले मुरली नैकु बजाउ
बलि-बलि जात सखा यह कहि-कहि मधुर सुधा-रस प्या
दुरलभ जनम, दुलभ वृन्दावन, दुरलभ प्रेम-तरंग
ना जानिये बहुरि कब ह्वैहै, स्याम! तुम्हारो संग
कब पुनि गोप-भेस ब्रज धरिहौ, फिरिहौ सुरभिन सांग
कब तुम छाक छिनिकै खैहौ, हो गोकुल के नाथ !
अपनी-अपनी कंध-कमरियाँ ग्वालनि दयी डसा
सौह दिवाइ नंद-बाबा की रहे सकल गहि पांग
धरि करि बेनु अधर मनमोहन कियो मधुर धुनि गांग
मोहे सकल जीव जल-थल के, सुनि बारधो तन-प्रांग

डुलति लता नहिं, मरुत मंद गति, सुनि सुंदर मुख-बैन
 खग-मृग-मीन अधीन भये सब, कियो जमुन-जल सैन
 आयसु दियो गोपाल सबनि को सुखदायक जिय जानि
 सूरदास, चरननि-रज माँगत, निरखत रूप निधान ।

तुलसीदास

तुलसीदास सरयूपारीण ब्राह्मण कहे जाते हैं। उनका जन्म शिष्य परंपरा के अनुसार सं० १५५४ की श्रावण शुक्ला सप्तमी को हुआ। (अन्य लोग सं० १५८९ में मानते हैं)। उनके माता-पिता का देहान्त बचपन में ही हो गया था। नरहरिदास नाम के एक महात्मा ने उनका पालन-पोषण किया और उन्हें राम-कथा सुनायी। प्रसिद्धि है कि वे अपनी स्त्री से बहुत प्रेम करते थे और उसी की फटकार से विरक्त हुए। उनका देहान्त सं० १६८० में हुआ।

तुलसीदास हिंदी के सर्वश्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। उनके ग्रंथों के नाम ये हैं—(१) रामचरितमानस, (२) गीतावली, (३) कृष्णगीतावली, (४) कवितावली, (५) दोहावली, (६) विनयपत्रिका, (७) रामाज्ञा, (८) जानकी मंगल, (९) पार्वती मंगल, (१०) बरवै रामायण, (११) वैराग्य-संदीपिनी, (१२) रामलला-नहछू, (१३) तुलसी-सतसई।

तुलसी अपने समय के असाधारण प्रतिभाशाली महापुरुष और महान लोकनायक हुए। हिंदू जाति के जीवन पर तुलसी का गहरा प्रभाव पड़ा है। उनकी रचना का आज घर-घर प्रचार है। उनका रामचरितमानस आज उत्तर-भारत का सर्वप्रधान धर्म-ग्रंथ हो रहा है। उसकी चौपाइयाँ धर्म-वाक्यों की भाँति काम में लायी जाती हैं।

तुलसी, सूर आदि के सम्बन्ध में प्रसिद्ध कुछ उक्तियाँ नीचे दी जाती हैं—

तत्त्व-तत्त्व सूर कही, तुलसी कही अनूठि ।

बची-खुची कबिरा कही, और कही सब झूठि॥१॥

सूर सूर, तुलसी ससी, उडुभन केसवदास ।
 अबके कवि खद्योत सम, जहं-तहं करहें प्रकास ॥२॥
 कविता-करता तीन हैं, तुलसी केसव सूर ।
 कविता-खेती इन लुनी, सीला बिनत मजूर ॥३॥

(१) राम वनवास

दो०—जाइ दीख रघु-बंस-मनि नरपति निपट कुसाजु ।

सहमि परेउ लखि सिध्निनिहि मनहुँ बृद्ध गजराजु ॥३९॥
 सखहि अधर जरहि सब अंगू । मनहुँ दीन मनिहीन भुअंगू ॥
 सरूप समीप देखि कैकेई । मानहुँ मीचु घरी गनि लेई ॥
 करुनामय मृदु राम सुभाऊ । प्रथम दीख दुखु सुना न काऊ ॥
 तदपि धीर धरि समउ बिचारी । पूछो मधुर वचन महतारी ॥
 मोहि कहु मातु तात-दुखु-कारनु । करिय जतनु जेहि होइ निवारनु ॥
 सुनहु राम सब कारन एहू । राजहि तुम्ह पर बहुत सनेहू ॥
 देन कहेनिह मोहि दुइ बरदाना । मांगेउ जो कछु मोहि सोहाना ॥
 सो सुनि भयउ भूप उर सोचू । छाड़ि न सकहि तुम्हार सँकोचू ॥
 दो०—सुत सनेहु इत बचनु उत संकट परेउ नरेसु ।

सकहु त आयसु धरहु सिर मेटहु कठिन कलेसु ॥४०॥
 निधरक बैठि कहइ कटुबानी । सुनत कठिनता अति अकुलानी ॥
 जीभ कमान बचन सर नाना । मनहुँ महिप मृदु-लच्छ-समाना ॥
 जनु कटोरपनु धरे सरीरू । सिखइ धनुषविद्या बरबीरू ॥
 सबु प्रसंगु रघुपतिहि सुनाई । बैठि मनहु तनु धरि निठुराई ॥
 मन मुसकाइ भानु-कुल-भानू । राम सहज-आनंद-निधानू ॥
 बोले बचन बिगत सब दूषन । मृदु मंजुल जनु बागविभूषन ॥
 सुनु जननी सोइ मुत बड़भागी । जो पितु-मातु-बचन-अनुरागी ॥
 तनय मातु-पितु-तोषिनि-हारा । दुर्लभ जननि सकल संसारा ॥

दो०—मुनिगन मिलनु बिसेषि बन सबहि भांति हित मोर ।

तेहि महँ पितुआयसु बहुरि संमत जननी तोर ॥४१॥

भरतु प्रानप्रिय पावाँहि राजू । बिधि सबबिधि मोहिँ सनमुख आजू ॥

जौं न जाउँ बन ऐसेहु काजा । प्रथम गनिय मोहिँ मूढसमाजा ॥

मेवाँहि अरँडु कलपतरु त्यागी । परिहरि अमृतु लेहि बिषु माँगी ॥

तेउ^१ न पाइ अस समउ चुकाहीं । देखु बिचारि मातु मनमाहीं ॥

अंब एक दुखु मोहि बिसेखी । निपट बिकल नरनायक देखी ॥

थोरिहि बात पितहि दुखु भारी । होति प्रतीति न मोहि महतारी ॥

राउ धीरु गुन-उदधि-अगाधू । भा मोहि तें कछु बड़ अपराधू ॥

ता तें मोहि न कहत कछु राऊ । मोरि सपथ तोहि कहु सतिभाऊ ॥

दो०—सहज सरल रघुबरबचन कुमति कुटिल करि जान ।

चलइ जोंक जिमि बक्रगति जद्यपि सलिलु समान ॥४२॥

रहँसी रानि रामरुख पाई । बोली कपटसनेहु जनाई ॥

सपथ तुम्हार भरत कइ आना । हेतु न दूसर में कछु जाना ॥

तुम्ह अपराध जोगु नहि ताता । जननी-जनक-बंधु-सुख-दाता ॥

राम सत्य सबु जो कछु कहह । तुम्ह पितु मातु बचन-रत अहह ॥

पितहि बुभाइ कहहु बलि सोई । चौथेपन जेहि अजसु न होई ॥

तुम्ह सम सुअनु सुकृत जेहि दीन्है । उचित न तासु निरादर कीन्है ॥

लागहि कुमुख बचन सुभ कैसे । मगह गयादिक तीरथ जैसे ॥

रामहि मातुबचन सब भाये । जिमि सुरसरिगत सलिल सुहाये ॥

दो०—गइ मुरछा रामहि सुमिरि नृप फिरि करबट लीन्हि ।

सचिव रामआगमनु कहि बिनय समयसम कीन्हि ॥४३॥

अबनिप अकनि रामु पगु धारे । धरि धीरजु तब नयन उधारे ॥

सचिव सँभारि राउ बैठारे । चरन परत नृप रामु निहारे ॥

छ०—तेऊ पाय न समउ चुकाहीं ।

लिये सनेहबिकल उर लाई । गइ मनि मनहुँ फनिक फिरि पाई ॥
 रामहि चितइ रहेउ नरनाहू । चला बिलोचन बारिप्रबाहू ॥
 सोकबिबस कछु कहइ न पारा । हृदय लगावत बारिहबारा ॥
 बिधिहि मनाव राउ मनमाहीं । जेहि रघुनाथ न कानन जाहीं ॥
 सुमिरि महेसहि कहइ निहोरी । बिनती सुनहु सदासिव मोरी ॥
 आसुतोष तुम अवढर दानी । आरति हरहु दीनजनु जानी ॥

दो०—तुम्ह प्रेरक सबके हृदय सो मति रामहि देहु ।

बचन मोर तजि रहहि घर परिहरि सील सनेहू ॥४४॥

अजसु होउ जग सुजसु नसाऊ । नरक परजँ बरु सुरपुर जाऊ ॥
 सब दुख दुसह सहावहु मोहीं । लोचनओट राम जनि होहीं ॥
 अस मन गुनइ राउ नहि बोला । पीपर—पात—सरिस मनु डोला ॥
 रघुपति पितहि प्रेम बस जानी । पुनि कछु कहहि मातु अनुमानी ॥
 देस काल अवसर अनुसारी । बोले बचन बिनीत बिचारी ॥
 तात कहहुँ कछु करजँ ठिठाई । अनुचित छमब जानि लरिकारि ॥
 अति-लघु-बात लागि दुखुपावा । काहु न मोहि कहि प्रथम जनावा ॥
 देखि गोसाइहि पूछिजँ माता । सुनि प्रसंगु भये सीतल गाता ॥

दो०—मंगल समय सनेहबसु सोचु परिहरिय तात ।

आयसु देख्य हरषि हिय कहि पुलके प्रभुगात ॥४५॥

धन्य जनमु जगतीतल तासू । पितहि प्रमोदु चरित सुनि जासू ॥
 चारि पदारथ करतल ताके । प्रिय पितुमातु प्रानसम जाके ॥
 आयसु पालि जनमफलु पाई । ऐहजँ बेगिहि होउ रजाई ॥
 बिदा मातु सन आवजँ मांगी । चलिहजँ बनहि बहुरि पग लागी ॥
 अस कहि रामु गवनु तब कीन्हा । भूप सोकबस उतर न दीन्हा ॥
 नगर व्यापि गइ बात सुतीछी । छुअत चढ़ी जनु सब तनु बीछी ॥

मुनि भये बिकल सकल नरनारी । बेलि बिटप जिमि देखि दवारी ॥
जो जहँ सुनइ धुनइ सिरु सोई । बड़ बिषाद नहिं धीरज होई ॥

दो०—मुख सुखाहिं लोचन सबहिं सोक न हृदय समाइ ।

मनहुँ करुन-रस-कटकई उतरी अवध बजाइ ॥४६॥

मिलेहि माँझ बिधि बात बिगारी । जहँ तहँ देहिं कैकइहिं गारी ॥
एहि पापिनिहिं बूझिका परेऊ । छाइ भवन पर पावकु धरेऊ ॥
निजकर नयन काढ़ि चह दीखा ; डारि सुधा विषु चाहत चीखा ॥
कुटिल कठोर कुबुद्धि अभागी । भइ रघु-वंस-बेनु-बन आगी ॥
पालव बैठि पेडु एहि काटा । सुख महुँ सोक ठाटु धरि ठाटा ॥
सदा राम एहि प्रानसमाना । कारन कवन कुटिलपनु ठाना ॥
सत्य कहहिं कबि नारिसुभाऊ । सबबिधि अगम अगाध दुराऊ ॥
निजप्रतिबिंबु बरुन गहि जाई । जानि न जाइ नारिगत भाई ॥

दो०—काह न पावक जारि सक का न समुद्र समाइ ।

का न करइ अबला प्रबल केहि जग कालु न खाइ ॥४७॥

का सुनाइ बिधि काह सुनावा । का देखाइ चह काह देखावा ॥
एक कहहिं भलु भूप न कीन्हा । बरु बिचारि नहिं कुमतिहि दीन्हा ॥
जो हठि भयउ सकल दुख भाजनु । अबलाबिब्रम ग्यानु गुनु गा जनु ॥
एक धरमपरमिति पहिचाने । नृपहि दोसु नहिं देहि सयाने ॥
सिबि-दधीचि-हरिचंद-कहानी । एक एक सन कहहिं बखानी ॥
एक भरत कर संमत कहहिं । एक उदास भाय सुनि रहहीं ॥
कान मूँदि कर रद गहि जीहा । एक कहहिं यह जात अलीहा ॥
सुकुत जाहिं अस कहत तुम्हारे । राम भरतु कहैं प्रानपियारे ॥

दो०—चंदु चवइ वरु अनलकन सुधा होइ विष तूल ।

सपनेहुँ कबहु न करहिं कछु भरतु रामप्रतिकूल ॥४८॥

(२) दोहे

राका-पति सोडस उगहि, तारा-गन समुदाय
सकल गिरिन दव लाइयै, रवि बिन रात न जाय ॥१॥

ऊंची जाति पपीहरा , पियै न नीचो नीर
कै जांचै धन स्याम साँ , कै दुख सहै सरीर ॥२॥

तुलसी, संत सु अंब तरु, फूल-फलहि पर हेत
इततें ये पाहन हनत , उत तें वे फल देत ॥३॥

साहब तें सेवक बड़ो, जो निज धरम सुजान
राम बांधि उतरे उदधि, नांधि गये हनुमान ॥४॥

सूर समर करनी करहि, कहि न जनावहि आपु
विद्यमान रिपु पाइ रन, कायर करहि प्रलापु ॥५॥

तुलसी, पावस के समै, धरी कोकिला मौन
अब तो दादुर बोलिहैं , हमें पूछिहै कौन ? ॥६॥

दुरजन दरपन सम सदा, करि देखो हिय गौर
सनमुख की गति और है, बिमुख भये गति और ॥७॥

तुलसी, जो कीरति चहैं, पर-कीरति को खोइ
तिनके मुंह मसि लागिहै, मुये न मिटिहै धोइ ॥८॥

तुलसी, अपनो आचरन, भलो न लागत कासु
तेहि न बसात जो खात नित, लहमुन हू को बासु ॥९॥

आवत ही हरखै नहीं, नैनन नहीं सनेह
तुलसी, तहाँ न जाइयै, कंचन बरसै मेह ॥१०॥

काम क्रोध मद लोभ की, जब लग मन में खान
का पंडित, का मूरखी , दोऊ एक समान ॥११॥

जग ते रहू छत्तीस हूँ, राम चरन छै-तीन
तुलसी, देखु बिचारि हिय, है यह मतो प्रवीन ॥१२॥

रुगन महरत-जोग-बल, तुलसी गनत न काहि
राम भये जेहि दाहिने , सबै दाहिने ताहि ॥१३॥

तुलसी अपने राम को , भजन करहु निरसंक
आदि-अंत निरबाहिबो जैसे नव को अंक ॥१४॥

राम-चरन-अवलंब बिनु परमारथ की आस
तुलसी, बारिद-बूंद गहि चाहत चढ़न अकास ॥१५॥

नरोत्तमदास

नरोत्तमदास जाति के ब्राह्मण थे और सीतापुर जिले के बाड़ी नामक कसबे के रहनेवाले थे। उनका समय सं० १६०० के आसपास है। उनकी दो रचनायें प्रसिद्ध हैं—एक सुदामा-चरित्र और दूसरी ध्रुवचरित्र।

सुदामा-चरित्र एक खंड-काव्य है। इसमें कृष्ण के मित्र भक्तसुदामा की कथा है। यह ग्रंथ हिंदी साहित्य का अमूल्य रत्न है। इसकी कविता बड़ी ही सरस, भावपूर्ण और हृदय-ग्राहिणी है। भाषा ब्रजभाषा है जो प्रवाहपूर्ण और मिठास-युक्त है। स्थान-स्थान पर प्रचलित मुहावरों का प्रयोग हुआ है जिससे उसमें रोचकता आ गयी है। वर्णन ऐसे हैं जो हूबहू चित्र खड़े कर देते हैं। दरिद्रता और वैभव दोनों के चित्र बड़ी ही कुशलता से अंकित किये गये हैं। संवादों की योजना बड़ी स्वाभाविक हुई है।

इस प्रकार उनकी कविता में 'भावुकता, मौलिकता, स्वाभाविकता, सरलता और रसात्मकता का एक ही साथ सन्निवेश हो गया है।'

शिवसिंह-सरोज के लेखक ने इस कवि के विषय में लिखा है—

सुदामा-चरित्र बनाया है मानो प्रेम-समुद्र बहाया है।

सुदामा-चरित

[१]

लोचन कमल, दुखमोचन, तिलक भाल,
स्रवनन कुंडल, मुकुट धरे माथ हैं ।
ओढ़े पीत वसन, गले में बैजयंती माल,
संख चक्र गदा और पद्म लिये हाथ हैं ॥

कहत नरोत्तम, संदीपन गुरु के पास,
तुम ही कहत, हम पढ़े एक साथ हैं ।
द्वारिका गये ते हरि दारिद हरेंगे पिय !
द्वारिका के नाथ वे अनाथन के नाथ हैं ॥१॥

सिच्छक हौं सिंगरे जग को तिय ! ताको कहा अब देति है सिच्छा ?
जे तप कै परलोक सुधारत, संपति की तिनके नहिं इच्छा ॥
मेरे हिये हरि के पदपंकज, बार हजार लै देखु परिच्छा ॥
औरन को धन चाहिये बावरि ! बांभन को धन केवल भिच्छा ॥२॥

दानी बड़े तिहुं लोकन में जग जीवत नाम सदा जिनको लै ।
दीनन की सुधि लेत भली विधि, सिद्धि करो पिय ! मेरो मतो ले ॥
दीनदयालु के द्वार न जात सो और के द्वार पै दीन हूँ बोलै ।
श्रीजदुनाथ से जाके हितु सो, तिहुं पन क्यों कन मांगत डोलै ? ॥३॥

छत्रिन के पन जुद्ध जुवा दल साजि चढ़ै गज-बाजिन ही ।
वैस को बानिज और कृषीपन, सूझ को सेवन साजन ही ॥
बिप्रन को पन है जु यही, सुख-संपति सों कछु काज नहीं ।
कै पढ़िबो कै तपो धन है, कन मांगत बांभन लाज नहीं ॥४॥

कोदों सवा जुरती भरि पेट, न चाहति हौं दधि दूध मिठौती ।
सीत बितीत भयो सिसिआतहि, हौं हठती पै तुम्हें न हठौती ॥
जो जनती न हितु हरि से, तो मैं काहे को द्वारिका ठेलि पठौती ॥
या घर तें कबहूँ न गयो पिय ! टूटौ तवा अरु फूटी कठौती ॥५॥

छाँड़ि सबै तक तोहि लगी बक आठहुं जाम यहै ठक ठानी ।
जातहिं देहें लदाय लड़ा भरि, लैहों लदाय यहै जिय जानी ॥
पैय अटारी-अटा कहूँ तें, जिनको विधि दीनी है टूटी सी छानी ।
जो पै दरिद्र ललाट लिख्यौ, तो पै काहु के भेटे न जात अघानी ! ॥६॥

फाटे पट, टूटी छानि, खायो भीख माँगि आनि,
 बिना जग्य बिमुख रहत देव - पित्रई ।
 वे हैं दीनबन्धु, दुखी देखि के दयालु ह्वैहै,
 दैहैं कछु भलो, सो हौं जानत अगत्रई ॥
 द्वारिका लौं जात पिय ! केतौ अलसात तुम,
 काहे को लजात, भयी कौन सी विचित्रई ।
 जो पै सब जन्म ये दरिद्र ही सतायो तो पै,
 कौन काज आय है कृपानिधि की मित्रई ? ॥७॥

तैं तो कही नीकी, सुनु बात हित ही की, यह
 रीति मित्रई की नित प्रीति सरसाइयै ।
 चित्त के मिले ते वित्त चाहियें परसपर,
 मित्र के जो जेंइये तो आपहू जमाइयै ॥
 वे हैं महाराज, जोरि बैठत समाज भूप,
 तहां यह रूप जाय कहा सकुचाइयै ।
 दुख-सुख सब दिन काटे ही बनैगो, भूलि
 बिपति परे पै द्वार मित्र के न जाइये ॥८॥

विप्र के भगत हरि जगत विदित बंधु,
 लत सब ही की सुधि ऐसे महादानि हैं ।
 पढ़े एक चटसार, कही तुम कैयो बार,
 लोचन अपार, वे तुम्हें न पहिचानिहैं ?
 एक दीनबन्धु कृपासिन्धु फेरि गुरुबन्धु,
 तुम सम कौन दीन जाको जिय जानिहैं ?
 नाम लेत चौगुनी, गये तैं द्वार सौगुनी,
 बिलोकत सहसगुनी प्रीति प्रभु मानिहैं ॥९॥

द्वारिका जाहु जू, द्वारिका जू, आठहूँ जाम यही जक तेरे ।
जौ न कहौ करियै तौ बड़ो दुख, जैयै कहाँ अपनी गति हेरे ॥
द्वार खड़े प्रभु के छरियां, तहं भूपति जान न पावत नेरे ।
पान सुपारी तौ देखि बिचारि कै, भेंट को चारिन न चांउर मेरे ॥१०॥

यह सुनि कै तब बांभनी, गयी परोसिनि पास ।
सेर पाव चांउर लिये, आयी सहित ह्लास ॥११॥

सिद्ध करी गणपति सुमिरि, बाधि दुपटिया खूट ।
मांगत खात चले तहां मार्ग बाली-बूट ॥१२॥

[२]

दृष्टि चकचौधि गयी देखत सुबर्नमया,
एक तें सरस एक द्वारिका के भौन हैं ।
पूछे बिन कोऊ काहू सों न करै बात जहाँ,
देवता से बैठे सब साधि-साधि मौन हैं ॥
देखत सुदामा धाय पुरजन गहे पांय,
कृपा करि कहौ, कहां कीने विप्र ! गौन हैं ?
धीरज अधीर के, हरन पर पीर के,
बताओ, बलबीर के, महल यहा कौन हे ? ॥१३॥

सीस पगा न भगा तन पै, प्रभु ! जाने को आहि, वसे केहि ग्रामा ।
घोती फटी सी लटी दुपटी, अरु पांय उपानह की नाहि सामा ॥
द्वार खड़ो द्विज दुर्बल देखि रह्यो चकि सो बसुधा अभिरामा ।
पूछत दीनदयालु को धाम, बतावत आपनो नाम सुदामा ॥१४॥

लोचन पूरि रहे जल सों, प्रभु दूर ते देखत ही दुख मेट्यो ।
सोच भयौ सुरनायक के, कलपद्रुम के हिय मांझ खखेट्यो ।

कैप कुबेर हिये सरसे परसे पग जात सुमेर ससेट्यो ।
 रंक तें राउभयो तबही, जबही, भरि अंग रमापति भेंट्यो ॥१५॥
 ऐसे बिहाल बिवाइन सों भये, कंटकजाल लगे पुनि जोये ।
 हाय महादुख पायो सखा ! तुम आये इतैं न, कितैं दिन खोये ॥
 देखि सुदामा की दीन दसा, करना करिकैं करुनानिधि रोये ।
 पानी परात को हाथ छुओ नाहि, नैनन के जल सों पग धोये ॥१६॥

तंदुल त्रिय दीने हुते, आगे धरियो जाय ।
 देखि राजसंपति-विभव, दै नाहि सकत लजाय ॥१७॥
 कछु भाभी हमको दियो, सो तुम काहे न देत ?
 चांपि गांठरी कांख में, रहे कहो किहि हेत ? ॥१८॥

आगे चना गुरु मात दये, ते लये तुम चाबि, हमें नाहि दीने ।
 स्याम कही मुसकाय सुदामा सों, चोरि की बानि में हौ जु प्रवीने ॥
 गांठरि कांख में चांपि रहे तुम, खोलत नाहि सुधारस-भीने ।
 पाछिलि बाद अजौं न तजी तुम, तैसे ही भाभी के तंदुल कीने ॥१९॥
 तंदुल मांगत मोहन, विप्र संकोच तें देत नही अभिलाखे ।
 है नाहि पास कछू कहिकैं, तेहि गोपि घनी विधि कांख में राखे ॥
 सो लखि दीनदयालि उतैं, यह चोरि करी तुम, यों हंसि भाखे ।
 खोलिके पोट अछोट मुठी गिरिधारन चाउर चाव सों चाखे ॥२०॥

हाथ गहयो प्रभु को कम्मला, कहै नाथ ! कहा तुमने चित धारी ?
 तंदुल खाइ मुठी दुइ, दीन कियो तुमने दुइ-लोक-बिहारी !
 खाय मुठी तिसरी अब नाथ ! कहा निज बास की आस बिसारी ?
 रंकहि आप समान कियो, तुम चाहत आपहि होन भिखारी ? ॥२१॥

रूपे के रुचिर थार पायस सहित सिता
 जीती जिन सोभा है सरदहू के चंद की ।

दूसरे पहीति भात सान्यो है सुरभि-वृत,
 फूले-फूले फुलका प्रफुल्ल दुति मंद की ॥
 पापर मुंगौरी बरा बेसन अनेक भाँति,
 देवता विलोक सोभा भोजन-अनंद की ।
 या बिधि सुदामा जू को अच्छ कै जिमाय प्रभु,
 पाछे के पछचावरी परोसी आनि कंद की ॥२२॥
 परम कृपा दिन-दिन करी, कृपानाथ जदुराय ।
 मित्र भावना बिसतरी, दूनो आदर-भाय ॥२३॥

दाहिने बेद पढ़ें चतुरानन,
 सामुहे ध्यान महेस घर्यौ है ।
 बायें दोऊ कर जोरि सुसेवक
 देवन साथ सुरेश खर्यौ है ॥
 एतनि बीच अनेक लिए धन,
 पांयनि आय कुबेर पर्यौ है ।
 देखि विभौ अपनो सपनो,

बपुरो वह बां मन चौंकि पर्यौ है ॥२४॥
 देनो हुतो सो दे चुके, विप्र न जानी गाथ ।
 चलती बेर गोपालजी, कछू न दीनो हाथ ॥२५॥
 गोपुर लौ पहुँचाय के, फिरे सकल दरबार ।
 मित्र-बिजोगी कृष्ण के, नेत्र चली जलधार ॥२६॥

[३]

वह पुलकनि वह उठि मिलनि, वह आदर की भाँति ।
 यह पठवनि गोपाल की कछू न जानी जाति ॥२७॥
 घर-घर कर ओइत फिरे तनक दही के काज ।
 कहा भयो, जो अब भयो हरि को राज-समाज ? ॥२८॥

हैं कब इत आवत हुतो, वाही पठ्यौ पेलि ।
अब कहिहैं घर जाय कै, धन धन धरहु सकेलि ॥२९॥

बालापन के मित्र हैं, कहा देउ में साप ।
जैसो हरि हमको दियो, तैसो पइयौ आप ॥३०॥

और कहा कहिये जहां, कंचन ही के धाम ।
निपट कठिन हरि को हियो, मोको दियो न दाम ॥३१॥

इमि सोचत-सोचत भक्त, आये निज पुर तीर ।
दीठि परी डक बार ही, ह्य-गयंद की भीर ॥३२॥

वेई सुरतरु प्रफुलित फुलवारिन में,
वेई सुरवर हंम बोलन-मिलन कों ।

वेई हेम - हीरन दिसान दहलीजन में,
वेई गजराज - ह्य गरज-पिलन कों ॥
द्वार-द्वार छरी लिये द्वारपौरिया जौ खरे,
बोलत मरोर-बरजोर त्यों भिलन कों ॥
द्वारिका तें चल्याँ भूलि द्वारिका ही आयौ नाथ !
मांगियौ न मो पै चारि चाउर गिलन कों ॥३३॥

जगर-मगर जोति छाय रही चहुँ ओर,
अगर-बगर हाथी-घोरन को रोर है ।
चौपर को बनो है बजार, पुनि सोनन के,
महल, दुकान की कतार चहुँ ओर है ॥
भीरभार धकापेल चहुँ दिसि देखियत,
द्वारिका तें दूनो यहां प्यादन को जोर है ।

रहिबे को ठाम है न, काहू सों पिछान मेरी,
 बिन जाने बसे कोऊ हाड़ मेरे तोरहै ॥३४॥
 फूटी एक थारी, बिन टोटी की भारी हुती,
 बांस की पिटारी औ कंधारी हुती टाट की।
 बेंटे बिन छुरी, औ कमंडलु, सौ टूक वहाँ,
 फटे हुते पावौ पाटी टूटी एक खाट की ॥
 पथरौटा, काठ को कठौता, कहूं दीसै नाहिं,
 पीतर को लोटो हो, कटोरो हो न बाट की।
 कामरी फटी सी हुती, डोंड़न की माला ताक,
 गोमती की माटी की न सुध कहूं माटकी ॥३५॥
 चौतरा उजारि कोऊ चामीकर-धाम कियो,
 छानी तौ उपारि डारी, छायी चित्रसारी जू।
 औ हौ होतो घर, तौ पै काहे को उठन देतो,
 होनहार ऐसी खोटी दसाई हमारी जू ॥
 हौं तो हो न, काहू लोभ-लाहु कों दिखाइ वाहि
 महल उठाय लयो हाय ! सुखागारी जू।
 लामी लूमवारी दुख-भूख की दलनहारी
 गैया बनवारी काहू सोइ मारि डारी जू ॥३६॥
 कही बांभनी आइ कै, यहै कँत निज गेह।
 श्री जदुपति तिहुं लोक में कीन्हो प्रगट सनेह ॥३७॥
 टूटी सी मड़ैया मेरी परी हुती याही ठौर,
 तामें परो दुख काटौं, कहां हेम-धाम री !
 जेवर जराऊ तुम साजे प्रति अंग-अंग,
 सखी सोहैं संग, वह छूछी हुती छाम री ॥

तुम तो पटंबर की ओढ़े हो किनारीदार

सारी जरतारी वह ओढ़े कारी कामरी।

मेरी बा पंडाइन निहारी अनुहार ही पै

बिपदा सतायी वह, पायी कहां पामरी ? ॥३८॥

समुझायौ निज कंत को मुदित गयी ले गंह।

अन्हवायो तुरतहि उबटि सुचि सुगंध सों देह ॥३९॥

उठे पहिरि अंबर रुचिर सिंहासन पर आय

बैठे, प्रभुता देखि कै सुरपति रह्यो लजाय ॥४०॥

कै वह टूटी सी छानि हुती, कहं कंचन के सब धाम सुहावत

कै पग में पनही न हुती, कहं ले गजराजहु ठाढ़े महावत

भूमि कठोर पै रात कटै, कहं कोमल सेज पै नींद न आवत

कै जुरतौ नहि कोदो-सबां, प्रभु के परताप तें दाख न भावत ॥४१॥

रहीम

रहीम का पूरा नाम अब्दुर्रहीम खानखाना था। वे सम्राट् अकबर के संरक्षक बैरम खाँ खानखाना के पुत्र थे। उनका जन्म सं० १६११ में और देहांत सं० १६७४ में हुआ। वे अकबर के प्रसिद्ध सेनापति थे और उनने कई-एक युद्धों में भाग लिया था।

रहीम अनेक भाषाओं के विद्वान् थे। तुलसीदास, केशवदास आदि हिंदी के अनेक तत्कालीन कवियों के साथ उनका संपर्क था। मुसलमान होते हुए भी वे कृष्ण के भक्त थे। उनकी रचनाओं में विजातीय वातावरण कहीं नहीं मिलता। रहीम की रचनाओं में बरब-नायिका-भेद और रहीम-सतसई विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। सतसई अब पूरी नहीं मिलती। उसमें भक्ति, नीति, प्रेम आदि विविध विषयों के दोहे हैं। ये दोहे जनता में बहुत लोकप्रिय हुए।

रहीम के नीति-विषयक दोहों में मानव-जीवन की विभिन्न परिस्थितियाँ की मार्मिक व्यंजना है। संसार का गहरा अनुभव होने के कारण उनमें स्वाभाविकता है, सजीवता है और है हृदय को स्पर्श करने की शक्ति। वे सूखे उपदेश-मात्र नहीं हैं।

कबीर के उपदेशों में उद्दंडता है और तुलसी के दोहों में गंभीरता पर रहीम के दोहों में कोमलता, मधुरता और सरलता है।

दोहे

अमर बेलि बिनु मूल की, प्रतिपालत है ताहि।

रहिमन, ऐसे प्रभुहि तजि खोजत फिरिये काहि ? ॥१॥

काम न काहू आवई, मोल, रहीम, न लेइ ।
 बाजू टूटे बाज को साहब चारा देइ ॥२॥
 घूरि घरत नित सीस पै, कहू रहीम, केहि काज ?
 जेहि रज मुनि-पतनी तरी, सो दूढ़त गजराज ॥३॥
 बड़े पेट के भरन को है, रहीम, दुख बाढ़ि ।
 यातें हाथी हहरि कै दिये दाँत द्वै काढ़ि ॥४॥
 रहिमन, अपने पेट सों बहुत कह्यो समुझाइ ।
 जो तू अनखाये रहै, तोसो को अनखाइ ? ॥५॥
 रहिमन, कहत सु पेट सों, क्यों न भयो तू पीठ ।
 रीते मान बिगारहू, भरे बिगारत दीठ ॥६॥
 रहिमन, रहिला के भली, जो परसै चित लाइ ।
 परसत मन मैलो करै, सो मैदा जरि जाइ ॥७॥
 रहिमन, मोहि न सुहाइ, अमी पियावत मान बिन ।
 जो बिष देइ बुलाइ, मानसहित मरिबो भलो ॥८॥
 रहिमन, रहिबो वा भलो, जो लौं सील समूच ।
 सील-ढील जब देखिये, तुरत कीजिये कूच ॥९॥
 रहिमन, पानी राखिये, बिन पानी सब सून ।
 पानी गये न ऊबरें, मोती मानुख चून ॥१०॥
 रहिमन, जिह्वा बावरी कहि गइ सरग-पतार ।
 आपु तौ कहि भीतर भयी, जूती खात कपार ॥११॥
 होइ न जाकी छाँह ढिग, फल रहीम अति दूर ।
 बाढ़ेउ सो बिनु काज ही, जैसे तार-खजूर ॥१२॥

नाद रीझि तन देत मृग, नर धन हेत-समेत ।
ते रहीम पसु तें अधिक, रीझेहु कछू न देत ॥१३॥

भलो भयो धरतें छुटयो, हस्यो सीस परि खेत ।
काके काके नवत हम अपन पेट के हेत ॥१४॥

रहिमन, अँसु नयन ढरि जिय दुख प्रगट करेइ ।
जाहि निकारो गेहतें, कस न भेद कहि देइ ॥१५॥

धनि रहीम जल पंक को, लघु जिय पियत अघाइ ।
उदधि बड़ाई कौन है, जगत पियासो जाइ ॥१६॥

रहिमन, राज सराहिये, ससि सम सुखद जो होइ ।
कहा बापुरो भानु है, तपै तरैयनि छोइ ॥१७॥

रहिमन, तहाँ न जाइये, जहाँ कपट को हेत ।
हम तन ढारत ढेकुली, सींचत आपन खेत ॥१८॥

ज्यों रहीम गति दीप की, कुल कपूत गति सोइ ।
बारें ऊजियारो करै, बढ़े अँधेरो होइ ॥१९॥

माँगे घटत रहीम पद, कितौ करौ बड़ काम ।
तीन पैग बसुधा करी, तऊ बावनै नाम ॥२०॥

जाल परे जल जात बहि तजि मीनन कर मोह ।
रहिमन, मछरी नीर कर तऊ न छाँड़ति छोह ॥२१॥

धनि रहीम गति मीन कै, जल बिछुरत जिय जाइ ।
जियत कंज तजि अनस बसि, कहा भँवर कर भाइ ॥२२॥

रहिमन, असमय के परे हित अनहित ह्वै जाइ ।
बधिक बध्यो मृग बान सों, रुधिरै देत बताइ ॥२३॥

काह कामरी पामरी, जाड़ गये सों काज ।
रहिमन, भूख बुताइये, कैस्यौ मिलै अनाज ॥२४॥

रहिमन, निज मन की बिथा मन ही राखो गोइ ।
सुनि अठिलैहैं लोग सब, बाँटि न लैहैं कोइ ॥२५॥

कदली सीप भुजंग-मुख स्वाति एक गुन तीन ।
जैसी संगति बैठिये, तैसोई फल दीन ॥२६॥

कमला थिर न, रहीम कहि, यह जानत सब कोइ ।
पुरुष पुरातन की वधू, क्यों न चंचला होइ ॥२७॥

जो रहीम ओछो बढै, तो अति ही इतराइ ।
प्यादा सों फरजी भयो, टेढ़ो-टेढ़ो जाइ ॥२८॥

रहिमन, सीधी चाल सों प्यादा होत वजीर ।
फरजी साह न ह्वै सकै, गति टेढ़ी तासीर ॥२९॥
काज परे कछु और है, काज सरे कछु और ।
रहिमन, भाँवरि के भये, नदी सिरावत मोर ॥३०॥

आवत काज, रहीम कहि, गाढ़े बंधु सनेह ।
जीरन होत न पेड़ ज्यों थामै बरहि बरेह ॥३१॥
दादुर मोर किसान मन लग्यो रहै घन माहि ।
रहिमन, चातक-रटनि कै सरवरि को कोउ नाहि ॥

मन सो कहाँ रहीम प्रभु, दृग सो कहाँ दिवान ।
देखि दृगन जो आदरै, मन तेहि हाथ बिकान ॥३३॥
अच्युत-चरन-तरंगिनी सिब-सिर-मालतिमाल ।
हरि न बनायौ सूरसरी, कीजै इंदव-भाल ॥३४॥

जो रहीम करिबौ हुतो ब्रज को इहँ हवाल ।
तो काहे कर पर घरचो गोबर्धन , गोपाल ! ॥३५॥

हरि रहीम ऐसी करी, ज्यों कमान सर पूरि ।
खैंचि आपनी ओर को, डारि दियो पुत्रि दूरि ॥३६॥

सर मूके पंछी उड़ै, औरै सरन्ह समाहि ।
दीन मीन बिनु पच्छ कं, कहु रहीम, कित जाहि? ॥३७॥



केशव

केशव सनाढ्य ब्राह्मण थे। उनका समय १६०८ से १६७६ तक माना जाता है। वे ओड़छा के महाराजा रामशाह के छोटे भाई इन्द्रजीत सिंह के आश्रय में रहते थे जो ओड़छे का सब राज-काज देखा करते थे। केशव का वे बड़ा आदर करते थे और उन्हें गुरुवत् मानते थे। काव्य के बल पर केशव ने लाखों रुपयों के पुरस्कार प्राप्त किये।

केशव के ग्रंथों में रामचंद्रिका, कविप्रिया, रसिकप्रिया, रतन बावनी, विज्ञान गीता और वीरसिंहदेव-चरित मुख्य हैं। रामचंद्रिका एक महाकाव्य है जिसमें विविध छंदों में रामचरित्र का वर्णन किया गया है।

केशव हिंदी के बहुत प्रसिद्ध कवि हैं। प्राचीन लोग उनका स्थान सूर और तुलसी के बाद ही मानते रहे हैं। 'सूर सूर, तुलसी ससी, उडुगन केशव-दास' यह उक्ति न-जाने कब से चली आयी है।

केशव अपने काव्य की कठिनता के लिए विशेष प्रसिद्ध हैं। उनकी कवितामें अलंकारों की भरमार रहती है।

केशव के संवाद बहुत सुंदर हुए हैं। ये संवाद नाटकीय शैली के हैं। उनमें वाग्वैदग्ध्य खूब पाया जाता है। व्यंग की भी अच्छी बहार मिलती है। संवादों की भाषा में अच्छा प्रवाह पाया जाता है। अलंकारों की भर्ती न होने से उनमें पर्याप्त स्वाभाविकता और सुबोधता है।

अंगद-रावण-संवाद

अंगद कूदि गये जहाँ आसनगत लंकेस।

मनु मधुकर करहाट पर शोभित स्यामल वेस ॥१॥

प्रतिहार—

पढ़ौ बिरंचि ! मौन बेद, जीव ! मोर छंडि रे ।

कुबेर ! बेर कै कही, न जच्छ-भीर मंडि रे ॥

दिनेस ! जाय दूरि बैठि नारदादि संगही ।

न बोलु चंद मंद-बुद्धि ! इन्द्र की सभा नहीं ॥२॥

अंगद यों सुनि बानी । चित्त महा रिस आनी ॥

ठेलिकै लोग अनैसे । जाय सभा महं बैसे ॥३॥

रावण—कौन हो, पठ्ये सो कौनै, ह्याँ तुम्हें कहा काम है ?

अंगद—जाति वानर, लंकनायक-दूत, अंगद नाम है ॥

रावण—कौन है, वह बांधि कै हम देह पूछ सबै दही ?

अंगद—लंक जागि सँहारि अच्छ गयो, सो बात वृथा कही ? ॥४॥

महोदर—कौन भाँति रहौ तहाँ तुम ?

अंगद—राज-प्रेषक जानिये ।

महोदर—लंक लाइ गयो जो वानर कौन नाम बखानियै ?

मेघनाद जो बांधियो, वहि मारियो बहुधा तबै ।

अंगद—लोक-लाज दुरयो रहै अति, जानियै न कहाँ अबै ॥५॥

कौन के सुत ? , बालि के, वह कौन बालि, न जानियै ?

काँख चाँपि तुम्हें जो सागर सात न्हात बखानियै ॥

है कहाँ वह ? बीर अंगद देव-लोक बताइयो ।

क्यों गयो ? रघुनाथ-वान-विमान बैठि सिधाइयो ॥६॥

लंकनायक को ? विभीषण देव दूषण को दहै ।

मोहि जीवत होहि क्यां ? , जग तोहि जीवत को कहै ? ॥

मोहि को जग मारिहै ? दुरबुद्धि तेरिय जानियै ।

कौन बात पठाइयो, कहि बीर ! बेगि बखानियै ॥७॥

अंगद—

श्री रघुनाथ को बानर, केसव, आयो हो एक, न काहू हयो जू ।
सागर को मद झारि चिकारि त्रिकूट की देह विहारि गयो जू ।
सीय निहारि सँहारिकै राच्छस सोक असोक-वनीहि दयो जू ।
अच्छ कुमारहि मारकै लंकहि जारिकै नीकेहि जात भयो जू ॥८॥

राम राजान के राज आये यहाँ
धाम तेरे, महाभाग जागे अबै ।
देवि मंदोदरी कुँभकर्णादि दै मित्र
मंत्री जिते, पूछि देखो सबै ।
राखियै जाति को पाँति को बंस को
गांत को, साधियै लोक-पल्लोक को ।
आनि कै पाँ परो, देस लै, कोष लै
आही ईस-सीता चलें ओक को ॥९॥

रावण—

लोक-लोकेस स्यों जो जु ब्रह्मा रचे,
आपनी-आपनी सीव सो-सो रहें ।
चारि बाहैं धरैं विष्णु रच्छा करें,
बात साँची यहै बेद-बानी कहै ।
ताहि भूभंग ही देव-देवेस स्यों,
विष्णु-ब्रह्मादि दे रुद्रजू संहारै ।
ताहि हौं छाँड़ि कै पाँय का के परौं,
आजु संसार तो पाँय मेरे परै ॥१०॥

राम को काम कहा ? रिपु जीतहि, कौन कबै रिपु जीत्यौ कहाँ ?
बालि बली, छल सों, भृगुनन्दन-गर्व हरयो. द्विज दीन महा ॥

दीन सु क्यों छिति-छत्र हृत्यो, बिन प्रानन हैहयराज कियो ।
हैहय कौन ?, वहै, बिसरयो ? जिन खेलत ही तोहि बाँधि लियो ॥११॥

अंगद—

सिंधु तरयो उनको बनरा, तुम पै धनु-रेख गयी न तरी ।
बाँदर बाँधत सो न बंध्यो, उन बारिधि बाँधिकै बाट करी ॥
श्रीरघुनाथ-प्रताप की बात तुम्हैं दसकंठ ! न जानि परी ।
तेलहु तूलहु पूँछ जरी न जरी, जरी लंक जराइ-जरी ॥१२॥

मेघनाद—

छाँड़ि दियो हम ही बनरा वह , पूँछ की आगिन लंक जरी ।
भीर में अच्छ मरयो चपि बालक, बादिहि जाय प्रसस्ति करी ॥
ताल बिंधे अरु सिंधु बँध्यो, यह चेटक, विक्रम कौन कियो ?
बानर को नर को बपुरा, पल मं सुरनायक बाँधि लियो ॥१३॥

अंगद—

चेटक सों धनु भंग कियो, तन रावन के अति ही बलु हो ।
बान समेत रहे पचिकै तहं जा संग पै न तज्यौ थलु हो ॥
बान सु कौन ?, बली बलि को सुत, वै बलि बावन बाँधि लियो ।
वेई सुतौ जिनकी चिर चेरिन नाच नचाइकै छाँड़ि दियो ॥१४॥

रावण—

नील सुखेन हनू उनके, नल और सबै कपि पुंज तिहारे ।
आठहु आठ दिसा बलि दै, अपनो पदुलै, पितु जा लगि मारे ॥
तोसे सपूतहि जाय कै बालि अपूतन की पदवी पगु धारे ॥
अंगद! संग लै मेरो सबै दल आजुहि क्यों न हतै बपु-मारे ॥१५॥

जो सुत अपने बाप को बैर न लेइ प्रकास ।

ता सों जीवत ही मरयो लोग कहैं तजि आस ॥१६॥

अंगद—

इनको बिलगु न मानियै, कहि कसव, पल आधु ।
पानी पावक पवन प्रभु ज्यों असाधु त्यों साधु ॥१७॥

रावण—

उरसि अंगद लाज कछू गहौ ।
जनक-घातक बात वृथा कहौ ॥
सहित लक्ष्मण रामहि संहरीं ।
सकल बानर-राज तुम्हें करौं ॥१८॥

अंगद—

सत्रु, सम, मित्र हम चित्त पहिचानहीं ।
दूत बिधि नूत कबहुँ न उर आनहीं ॥
आप मुख देखि, अभिलास अभिलासह ।
राखि भुज सीस तब और कहँ राखहू ॥१९॥

रावण—

मेरी बड़ी भूल कहा कहौं रे ।
तेरो कह्यो दूत सबै सहौं रे ॥
वै जो सबै चाहत तोहि मारयो ।
मारौं कहा तोहि जो दैव मारयो ॥२०॥

अंगद—

नराच श्रीराम जहीं धरेंगे ।
असेस माथे कटि भू परेंगे ॥
सिखा सिवा-स्वान गहे तिहारी ।
फिरें चहुँ ओर निरै-बिहारी ! ॥२१॥

रावण—

महामीचु दासी सदा पाँय धोवे ।
प्रतीहार ह्वैक कृपा मूर जोवै ॥
छपानाथ लीन्हं रहै छत्र जाको ।
करैगो कहा सत्रु सुग्रीव ताको ? ॥२२॥

सका मंधमाला, सिखी पाककारी ।
करै कोतवाली महादंडधारी ॥
पढ़ै वेद ब्रह्मा सदा द्वार जाके ।
कहा बापुगो सत्रु सुग्रीव ताके ? ॥२३॥

अंगद—

पेट चढ़्यो पलना पलका चढ़ि पालकिहू चढ़ि मोह मढ़्यो रे ।
चौक चढ़्यो चित्रसारि चढ़्यो गज-बाजि चढ़्यो गढ़ गर्व चढ़्यो रे ॥
व्योम विमान चढ़्योई रह्यो, कहि कंसव, सो कबहूँ न पढ़्यो रे ।
चेतत नाहि, रह्यो चढ़ि चित्त, मो चाहत मूढ़ चिताहूँ चढ़्यो रे ॥२४॥

रावण—

निकारयो जु भैया, लियो राज जाको ।
दियो काढि कैजू कहा त्रास ताको ॥
लिये बानराली, कहौं बात तो सों ।
मु कैसे जुरै राम संग्राम मो सों ॥२५॥

अंगद—

हाथी न साथी न घोर न चेर न गाउँ न टाउँ कुठाउँ बिलैहै ।
तात न मात न पुत्र न मित्र न बित्त न तीय कहुँ संग रहै ॥
कैसव, काम को राम बिसारत, और निकाम रे काम न ऐहैं ।
चेति रे चेति अजौं चित अंतर, अंतक-लोक अकेलोई जैहैं ॥२६॥

रावण—

डरै गाय बिप्रै, अनाथै जो भाजै ।

पर-द्रव्य छाँड़ै पर-स्त्रीहि लाजै ॥

पर-द्रोह जासों न होवै रती को ।

सो कैसेँ लरै बेस कीन्हें जती को ॥२७॥

गंद करचौ मै खेल को हर-गिरि केसोदास ।

सीस चढ़ाये आपने कमल समान स-हास ॥२८॥

अंगद—

जैसो तुम कहत उठायो एक हर-गिरि,

ऐसे कांठि कपिन के बालक उठावहीं ।

काटे जो कहत सीस, काटत घनेरे घाघ,

मगर के खेल क्यों मुभट पद पावहीं ॥

जीत्यों जोसुरेस रन, साप रिसि-नारि ही को,

समझहु, हम द्विज नाते समभावहीं ।

गहौ राम-पाँय , सुख पाय करै तपी तप,

सीता जू को देहि, देव दुंदुभी बजावहीं ॥२९॥

रावण—

तपीजपी बिप्रन छिप्रही हराँ ।

अदेव-द्वेषी सब देव संघराँ ॥

सिया न देहाँ, यह नेम जी धराँ ।

अ-मानुषी भूमि अ-बानरी कराँ ॥३०॥

अंगद—

पाहन ते पतिनी करी पावन, टूक कियो धनुह हर को रे ॥

छत्र-बिहीन करी छन में छिति, गर्व हरयो तिनके बर को रे ॥

पर्वत-पुंज पुरैनि के पात समान तरे , अजहूँ धरको रे ?
होयँ नरायन हू पै न ये गुन, कौन यहाँ नर, बानर को रे ? ॥३१॥

रावण—

देहि अंगद राज तो कहँ मारि बानरराज को ।
बाँधि देहि विभीषनै अरु फोरि सेतु-समाज को ॥
पूँछ जारहि अच्छरिपु की, पायँ लागहि रुद्र के ।
सीय को तब देहुँ रामहि, पार जायँ समुद्र के ॥३२॥

अंगद—

लंक लाय दियो बली हनुमंत, संतन गाइयो ।
सिंधु बाँधत सोधि कै नल छीर छींट बहाइयो ॥
ताहि तोहि समेत अंध ! उखारि हौं उलटी करौं ।
आजु राज कहाँ विभीषन बैठिहै तेहि ते डरौं ॥३३॥
अंगद रावन को मुकुट लै करि उड़ो सुजान ।
मनो चल्यो यमलोक को दससिर को प्रस्थान ॥३४॥

बिहारी

बिहारी माथुर चौबे ब्राह्मण थे। उनका जन्म गवालियर के पास वसुआ गोविंदपुर गाँव में सं० १६५२ के लगभग हुआ। कहते हैं कि उनसे कविता की शिक्षा महाकवि केशवदास से पायी थी। उनका विवाह मथुरा में हुआ और उनकी स्त्री भी अच्छी कवि थीं। उनका मृत्युकाल सं० १६७७ के लगभग माना जाता है।

बिहारी आमेर (जयपुर) के महाराजा जयसिंह प्रथम के आश्रय में रहते थे। महाराजा की आज्ञा से उनसे बिहारी-सतसई की रचना की जिसके प्रत्येक दोहे पर उन्हें महाराजा की ओर से एक-एक अशर्फी पुरस्कार में मिलती थी।

बिहारी की केवल एक ही रचना बिहारी-सतसई मिलती है। इसमें लगभग ७०० दोहे हैं जिनमें से अधिकांश शृंगार-रस के हैं। इसका जनता में बहुत प्रचार हुआ। इस पर पचासों टीकायें बनीं और संस्कृत, फारसी आदि में भी अनुवाद हुए। बिहारी-सतसई काव्य के मुक्तक भेद के अन्तर्गत आती है। छोटे से दोहे में कवि ने भाव भर कर मानो गागर में सागर भर दिया है। सतसई के दोहों के विषय में यह उक्ति प्रसिद्ध है—

सतसैया के दोहरे, ज्यों नावक के तीर।

देखत को छोटे लगै, घाव करै गंभीर ॥

सतसई के दोहे

जिन दिन देखे वे कुसुम, गयी सो बीति बहार।

अब अलि ! रही गुलाब की अ-पत कँटीली डार ॥१॥

यहि आसा अटक्यो रहै अलि गुलाब के मूल ।
ह्वैहै बहुरि वसंत रितु इन डारन वे फूल ॥२॥

नहि पावस, रितु-राज यह, तजि तरुवर ! मत भूल ।
अ-पत भये बिन पाइहै क्यों नव दल फल-फूल ? ॥३॥

कर लै, सूंधि, सराहि कै सबै रहे गहि मौन ।
गंधी ! गंध गुलाब को गंवई गाहक कौन ? ॥४॥

करि फुलेल को आचमन मीठो कहत सराहि ।
रे गंधी मति-अंध ! तू अतर दिखावत काहि ? ॥५॥

कनक कनक ते सौ गुनी मादकता अधिकाइ ।
वहि खाये बौराय जग, यहि पाये बौराइ ॥६॥

बड़े न हूजै गुनन बिन बिरद-बड़ाई पाइ ।
कहत धतूरे मों कनक, गहनो गढ़यो न जाइ ॥७॥

नर की अरु नल-नीर की गति ऐकै करि जोइ ।
जेतो नीचो व्है चलै, तेतो ऊँचो होइ ॥८॥

कोटि जतन कोऊ करै, परै न प्रकृतिहि बीच ।
नल-बल जल ऊँचो चढ़ै, अंत नीच-को-नीच ॥९॥

दीरघ सांस न लेहि दुख, सुख साँईहि न भूलि ।
दई ! दई ! क्यों करत है दई दयी सु कबूलि ॥१०॥

स्वास्थ्य-सुकृत न, स्रम वृथा, देखु विहंग ! विचारि ।
बाज ! पराये पानि परि तू पंछीन न मारि ॥११॥

अति अगाध, अति आँथरो, नदी कूप सर वाइ ।
सो ताको सागर, जहां जाकी प्यास बुझाइ ॥१२॥

जाके एकाएक हू जग व्योसाइ न कोइ ।
 सो निदाघ फूलै फलै आक डहडहो होइ ॥१३॥
 दिन दस आदर पाइकै करि लै आपु बखान ।
 जो लौं काग ! सराध-पख, तो लौं तो सनमान ॥१४॥
 बसैं बुराई जासु तन, ताही को सनमान ।
 भलो-भलो कहि छाड़ियै, खोटे ग्रह जप-दान ॥१५॥
 बुरो बुराई जौ तजै, तौ चित खरो सकात ।
 ज्यों निकलंक मयंक लखि, गनै लोग उतपात ॥१६॥
 दुसह दु-राज प्रजान में क्यों न करै दुख-दुंद ।
 अधिक अंधेरो जग करत मिलि मावस रवि-चंद ॥१७॥
 बिखम बृखादिन की तृखा जियत मतीरनि सोधि ।
 अमित अपार अगाध जल मारौ मूड़ पयोधि ॥१८॥
 चिरजीवौ जोरी, जुरै क्यों न सनेह गंभीर ।
 को घटि, ये बृखभानुजा, वे हल-धर के बीर ॥१९॥
 कोऊ कोटिक संग्रहौ, कोऊ लाख-हजार ॥
 मो संपति जदु-पति सदा विपति-बिदासहार ॥२०॥

देव

देव कान्यकुब्ज ब्राह्मण कहे जाते हैं। वे इटावे के रहनेवाले थे। उनका जन्म संवत् १७३० में हुआ और देहान्त सं० १८०० के लगभग। सोलह वर्ष की अवस्था में उन्होंने भाव-विलास नामक ग्रंथ की रचना की।

देव प्रतिभाशाली कवि थे पर अभाग्य-वश उनको कोई मनोनुकूल आश्रयदाता नहीं मिला। उनके अलग-अलग ग्रंथ अलग-अलग आश्रय-दाताओं के आश्रय में लिखे गये। उनकी कुछ रचनाओं के नाम ये हैं—

भाव-विलास, भवानी-विलास, रस-विलास, जाति-विलास, प्रेमचंद्रिका, सुखसागर-तरंग, काव्य-रसायन, देवमाया प्रपंच नाटक।

देव की अधिकांश रचनायें शृंगार-रस की हैं। कुछ पोछे की रचनायें भक्ति और वैराग्य पर भी हैं।

देव हिन्दी के सर्वोत्कृष्ट कवियों में से हैं।

रोतिकाल के कवियों में वे बिहारी के समकक्ष माने जाते हैं।

देव प्रधानतया प्रेम के कवि हैं। कविजनोचित भावुकता उनमें अच्छी मात्रा में पायी जाती है। कल्पना का चमत्कार भी उनमें खूब मिलता है। भाषा पर उनका अपरिमित अधिकार है। वह माधुर्य-संपन्न है। अनुप्रास, यमक आदि की उसमें प्रचुरता है यद्यपि इसके लिए कहीं-कहीं शब्दों को उन्हें काफी तोड़ना-मरोड़ना पड़ा है।

(१) विहार

(१)

सुनि कै धुनि चातक-मोरनि की चहुँ ओरनि कोकिल कूकनि सों
अनराग भरे हरि बागनि में सखि ! रागत राग अ-चूकनि सों

कवि देव, घटा उनयी, जु नयी बन-भूमि भयी दल-दूकनि सों
रंगराती हरी हहराती लता झुकि जाती समीर के झूकनि सों

(२)

स्याम के सँग सदा हम डोलैं, जहाँ पिक बोलैं, अली-गन गुंजै
लाहनि माह उछाहनि सों छहरैं जहाँ पीरी पराग की पुंजै
बोलनि में रस-कैलिनि में, कवि देव, कछू चित की गति लुंजै
कालिंदी-कूल महा अनुकूल ते फूलति मंजुल बंजुल-कुंजै

(२) वसंत

(३)

फूले अनारनि पांडर डारनि देखत, देव, महा उर माचैं
माधुरी भौरनि अंब के बौरनि भौरनि के गन मंत्र-से बांचैं
लागि उड़ै विरहागिनि की कचनारनि बीच अचानक आंचैं
सांचैं हुंकारि पुकारि पिकी कहैं—नाचैं बनैगी बसंत की पांचैं

(४)

माधुरी भौरनि फूलनि भौरनि बौरनि बौरनि बेली बची है
केसरि केसू कुसुम कुरौ किरबार कनेरनि रंग रची है
फूले अनारनि चंपक डारनि लै कचनारनि नेह तची है
कोकिल-रागनि नूत परागनि देखु री ! बागनि फाग मची है

(३) वर्षा

(५)

सोखे सिंधु सिंधुर से, बंधुर ज्यों विन्ध-नांध-

मादन के बंधु से, गरज गुरबानि के

भूमकारे भूमत, गगन घने घूमत,
 पुकारे मुख चूमत पपीहा मुखानि के
 नदी नद सागर डगर मिलि गये, देव,
 डगर न सूभूत नगर-पुरवानि के
 भारे जलधरनि अंध्यारे धरनी-धरनि
 धाराधर धावत धुमारे धुरवानि के

(४) यशोदा

(६)

बारे-बड़े उमड़े सब जै वै को, हौ न तुम्है पठवौ, बलिहारी
 मेरे तो जीवनु, देव, यही धनु, या ब्रज पायी मैं भीख तिहारी
 जानै न रीति अघाइन की, नित गाइन मैं बन भूमि बिहारी
 याहि कोऊ पहिचानै कहा, कछू जानै कहा मेरो कुंज-बिहारी

(७)

जादव-वृद्ध जो लेन पठाये, ततौ धनु गो-धनु ले सब जैयै
 या लरिकाहि कहा करिहै नृप ?, गोप-समूह सबै संग हैयै
 तौ लगि जीवन मो, ब्रज जौ लगि खेलत साथ लिये बल-भैयै
 सर्वसु कंसु हरौ न अबै किन, आंखिन ओट करौ न कन्हैयै

(५) गोपी और गोपाल

(८)

कंपत हियो; न हियो कंपत हमरो; क्यों
 हंसी तुम्है नीखी, नेकु सीत में ससन देहु
 अंबर-हरैया हरि ! अंबर उजेरा होत,
 हेरिकै हंसै न कोई, हंसै तो हंसन देहु

देव, दुति देखिबे को लोयन में लागी, लखो,
लोभन में लाज लागी; लोयन लसन देहु
हमरे बसन देहु, देख न हमारे कान्ह !,
अब हूं बसन देहु, ब्रज में बसन देहु

(९)

राज-पौरिया को रूप राधे को बनाइ ल्यायी
गोपी मथुरा तैं मधु-वन की लतानि में
टेरि कह्यो कान्ह सौं, चलौ जू, कंस चाहै तुम्हें,
काके कहे लूटत, सुने हौं दधि-दानि में
संग के न जाने गये डगर डराने, देव,
स्याम ससवाने से पुकरि कीने पानि में
छुटि गयो छल सो छबीली की विलोकनि में,
ढीली परीं भौहैं वा लजीली मुसकानि में

(१०)

बूझै बड़े बबा नंद को बंस, जसोमति माय को मायको बूझत
बोलत बात बड़ी बन में, मन में बूखभान बबा सों अरुभत
देव, दबीं हम नेह के नाते, न तो पुरिखा इन बातनि जूझत
जीभ संभारि न काढ़त गारि हौ, ग्वारि गंवारि हमें हरि बूझत !)

(६) शान्तरस

(११)

हाय दई ! यहि काल के ख्याल में फूल से फूल सबै कुम्हिलाने
देव-अदेव बली-बलहीन चले गये मोह की हौंस हिलाने
या जग बीच बचे नहिं मीच पै, जे उपजे ते मही में मिलाने
रूप-कुरूप गुनी-निगुनी जे जहाँ जनमे ते तहाँ बिलाने

खण्ड २

अर्वाचीन पद्य

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

(संवत् १९०७-१९४२)

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र अग्रवाल वैश्य थे। उनका जन्म काशी में हुआ। उनके माता-पिता का देहान्त उनके बचपन में ही हो गया था। उनकी शिक्षा भली-भांति नहीं हो पायी पर उनकी बुद्धि बहुत तीव्र थी। वे उदार विचारों के समाज-सुधारक थे। अपव्ययी भी बहुत थे जिससे अंतिम दिनों में उन्हें कष्ट उठाना पड़ा। उनका देहान्त केवल पैंतीस वर्ष की अवस्था में सं० १९४२ में हो गया। हिंदी के समाचारपत्रों ने उनको भारतेन्दु की उपाधि दी जो सब को पसंद हुई।

हरिश्चन्द्र आधुनिक हिंदी के जनक कहे जाते हैं। उस समय हिंदी की अवस्था बहुत हीन थी। राज-काज और अदालतों में उर्दू का जोर था। प्राचीन कविता को छोड़कर और किसी प्रकार का साहित्य हिंदी में नहीं था। गद्य सर्वथा अवनत दशा में था, लिखने की कोई निश्चित शैली न थी। लोग हिंदी को कोई भाषा ही नहीं समझते थे। भारतेन्दु ने लेखनी उठाकर हिंदी का साहित्य-भंडार भरा और दूसरे लोगों को भी इस ओर प्रवृत्त किया। गद्य की शैली निश्चित करके नये-नये आवश्यक और समयोपयोगी विषयों पर रचनाएँ कीं। कविता के प्रवाह को भी उनने बदला। पुराने ढर्रे की कविताओं के स्थान पर नवीन भावपूर्ण और सामयिक कविताएँ लिखी जाने लगीं।

देशभक्ति भारतेन्दु की रचनाओं की एक प्रमुख विशेषता है। किसी विषय पर लिख रहे हों, देश को वे कभी नहीं भूलते।

भारतेन्दु ने ब्रजभाषा और खड़ीबोली दोनों में कवितायें लिखी हैं।

उनकी महत्त्वपूर्ण रचनाओं के नाम ये हैं—

काव्य—प्रेम-माधुरी, प्रेम-फुलवारी, प्रबोधिनी आदि।

नाटक—सत्य-हरिश्चंद्र, अंधेरनगरी, चंद्रावली, भारत-दुर्वशा, नील-देवी, मुद्राराक्षस, आदि।

निबंध—एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न, पाँचवाँ पैगंबर आदि।

(१) प्रात-समीरण

मन्द-मन्द आवै देखो प्रात-समीरण

करत मुगंध चारो ओर विकीरन ॥१॥

सौरभ को दान दैत मुदित करत।

दाता बन्यो प्रात-पौन देखो री ! चलत ॥२॥

जगावत जीव जग करत चैतन्य।

प्रात-तत्त्व सम प्रात आवै धन्य-धन्य ॥३॥

छुअत सीतल सब होत गात आत।

स्नेही के परस सम पवन-प्रभात ॥४॥

प्रात-समीरण-सोभा कही नहीं जाय।

जगत उदयोगी करै आलस नसाय ॥५॥

जागै नारी-नर, लागै निज-निज काम।

पंछी चहचह बोलै ललित ललाम ॥६॥

गावत प्रभाती, बाजै मन्द-मन्द ढोल।

कहूँ करै द्विज-गान जय-जय बोल ॥७॥

बुझी लालटेन लिये भुकि रहे माथ।

पहरू लटक रहे लाँबे किये हाथ ॥८॥

वज्र सहनाई कहँ दूर सो मुनाय ।
 भैरवी की तान लेत चित्त को चुराय ॥९॥
 स्वान सोये जहां-तहां छिपी रहे चोर ।
 गरु पास बच्छन अहीर देत छोर ॥१०॥
 दही फल-फूल लिये ऊंचे बोलै बोल ।
 आवत ग्रामीन जन चले टोल-टाल ॥११॥
 व्यास बैठे घाट-घाट खोलि कै पुरान ।
 ब्राह्मन पुकारै लागे हाय हाय दान ॥१२॥
 अरुन किरन छाया, दिसा भयी लाल ।
 घाट-नीर चमकन लागे तीन काल ॥१३॥
 प्रलै पीछे मृष्टि सम जगत लखाय ।
 मानो मोह बीत्यो, भयो जानोदय आय ॥१४॥

(२) प्रबोधिनी

डूबत भारत नाथ ! वेगि जागो अब जागो
 आलस-दव एहि दहन तेतु चहुँ दिसि सों लागो
 महा-मूढ़ता वायु बढावत तेहि, अनुरागो
 कृपा-दृष्टि की वृष्टि बुभावहु, आलस त्यागो
 अपुनो अपनायो जानि कै करहु कृपा गिरिवर-धरन !
 जागो, बलि, वेगहि नाथ ! अब देहु दीन भारत सरन ॥१॥

गयो राज धन तेज रोष बल ग्यान नसायी
 बुद्धि वीरता श्री उछाह सूरत बिलायी
 आलस कायरपनो विरुद्धमता अब जागी
 रही मूढ़ता बैर परसपर कलह लराई

सब विधि नासी भारत-प्रजा कहूँ न रह्यो अवलंब अब
जागो, जागो करुनायतन ! फेरि जागिहौ नाथ ! कब ? ॥२॥

सीखत कोउ न कला उदर भरि जीवन केवल
पसु समान सब अन्न खात, पीवत गंगा-जल
धन बिदेस चलि जात तऊ जिय होत न चंचल
जड़ समान ह्वै रहत अकल-हत रचि न सकत कल
जीवत बिदेस की वस्तु लै ता बिनु कछु नहिं करि सकत
जागो, जागो अब सांवरे ! सब कोउ रुख तुमरो लखत ॥३॥

सब देसन की कला सिमिटि कै इत ही आवै
कर राजा नहिं लेहिं प्रजन पै हेत बढ़ावै
गाय दूध बहु देहिं तिनहिं कोऊ न सतावै
द्विज-गन आस्तिक होहिं मेघ सुभ जल बरसावै
तजि छुद्र वासना नर सबै निज उछाह उन्नति करहिं
कहिं कृष्ण राधिका-नाथ जय हमहूँ जिय आनंद भरहिं ॥४॥

श्रीधर पाठक

(संवत् १९१६-१९८५)

श्रीधर पाठक सारस्वत ब्राह्मण थे। उनका जन्म आगरा जिले के जोंधरी नामक गाँव में हुआ था। एंट्रेंस की परीक्षा पास करके वे सरकारी नौकरी करने लगे। वे लखनऊ में होनेवाले पंचम हिंदी साहित्य सम्मेलन के सभापति बनाये गये थे।

पाठकजी प्रकृति-सौंदर्य के बड़े प्रेमी थे। उनकी कविताओं में प्राकृतिक सौंदर्य-वर्णन की अच्छी छटा मिलती है। वे खड़ीबोली के प्रारंभिक कवियों में से थे। ब्रजभाषा में भी उनसे रचना की थी। भारत-प्रशंसा की बहुत-सी कविताएँ भी उनसे लिखी थीं। उनकी प्रमुख रचनायें ये हैं—

(१) श्रान्त-पथिक (२) ऊजड़ ग्राम (३) एकान्तवासी योगी
(४) काश्मीर-सुषमा (५) भारत-गीत (६) मनोविनोद।

प्रथम तीन रचनायें अंग्रेजी कवि गोल्डस्मिथ के काव्यों के अनुवाद हैं जो बड़े सुन्दर हुए हैं।

घन-विनय

हे घन !

किन देसन महँ छाये ? वर्षा बीति गयी।

फिरहु कहाँ भरमाये, क्या यह रीति नयी ॥१॥

सावन परम सुहावन पावन सोभा जोय।

सो विन तुम्हरे आवन रह्यो भयावन होय ॥२॥

सरि-वर सरित सुखानी, रज-मय मलिन अकास ।
ऊबि अबनि अकुलानी, खग-मृग मरि रहे प्यास ॥३॥

कहैं सब साज सजाये, करि रहे कहैं धन घोर ।
दल बादल कहैं छाये जिहि लखि नाचत मोर ॥४॥

तुम अंबुद ! जग-जीवन, जीवन नाम तुम्हार ।
चाहत तुव पय पीवन जीव नवीन उदार ॥५॥

भादों हू अस बीती बिन जल-बिंदु अकास ।
रूखी सूखी रीती निर्धन सून्य अकास ॥६॥

जहैं अगाध जल दलदल, पुल बिन नहिं उतराव
तहैं पैदलहि पथिक-दल चलि रहे बहु विन नाव ॥७॥

कहुं-कहुं कूपहु सूखे, हरे-हरे भुरि गये रूख ।
अक तुम्हरे भये रूखे हम सबही भये रूख ॥८॥

हे धन ! अबहुं न चितवहु इन बहु विपति निहारि ।
तुम सुख-दिन कित वितवहु हम कहैं दुख महँ डारि ॥९॥

पठवहु परम सुहावनि पावनि पूरब-पौन ।
सुभ संदेस सुनावनि जल-भर लावनि जौन ॥१०॥

गरजन गहन सुनावहु रन व्रत वीर समान ।
लरजन ललित दिखावहु, बाँधहु धुर धुरवान ॥११॥

कहुं-कहुं कइकि सुनावहु बिज्जु-पतन ललकार ।
कहुं मृदु स्रवन बरावहु भिल्ली-गन-भनकार ॥१२॥

पोखर नदी तड़ागन बागन बगियन बीच ।
गैल गली घर आंगन भरहु मचावहु कीच ॥१३॥

[८१]

कजरी मधुर मलारन की धुनि पुनि सुनवाउ ।
मंगल मोद मनावन की चरचा चलवाउ ॥१४॥
करि कृतकृत्य किसानन संवत्सर सरसाउ ।
सींचि सस्य तृन धानन तब निज धाम सिधाउ ॥१५॥

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

(मंवत् १९२२-२००३)

अयोध्यासिंह उपाध्याय सनाढ्य ब्राह्मण थे। उनका जन्म आजमगढ़ जिले के निजामाबाद गाँव में हुआ। वे पहले अध्यापक रहे, फिर कानूनगोई की परीक्षा पास करके कानूनगो हो गए। सं० १९८० में पं० मदनमोहन मालवीय के अनुरोध से हिन्दू विश्वविद्यालय में हिंदी के प्राध्यापक होकर चले आये जहाँ पर वे अपने अन्त समय तक कार्य करते रहे।

उपाध्यायजी सरल-हृदय और उदार विचारों के सज्जन थे। समाज-सेवा का भाव उनमें खूब भरा था। अपनी रचनाओं में समाज-सेवा की भावना को उनने प्रमुख स्थान दिया है।

उपाध्यायजी ने कविता और गद्य दोनों लिखे हैं। आपकी मुख्य-मुख्य रचनायें ये हैं—

महाकाव्य—प्रिय-प्रवास, वंदेही-वनवास।

कविता-संग्रह—पारिजात, कल्प-लता, पद्म-प्रमोद।

मुहावरों युक्त कविताओं के संग्रह—बोलचाल, चोखे चौपदे, चुभते चौपदे।

उपन्यास—ठेठ हिंदी का ठाठ, अधखिला फूल।

अन्य—हिंदी साहित्य का इतिहास, रस-कलस।

प्रियप्रवास अनुकान्त संस्कृत वृत्तों में लिखा हुआ महाकाव्य है। इसमें भगवान् कृष्ण की ब्रज-लीलाओं का वर्णन किया गया है। माता यशोदा, गोप-बालकों, गोपियों और राधा के कृष्ण-प्रेम का बड़ी भावुकता के साथ

चित्रण किया गया है। प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन भी बड़े सुन्दर हुए हैं। भाषा संस्कृत-गर्भित है।

वैदेही-वनवास में सीता के वनवास की कथा का वर्णन है। पारिजात में विविध विषयों की अनेक भाव-पूर्ण कविताओं का संग्रह है।

उपाध्यायजी ने कठिन-से-कठिन और सरल-से-सरल दोनों प्रकार की पद्य और गद्य रचनाएं लिखी हैं।

संकलित अंशों में से पहला प्रिय-प्रवास से और दूसरा पारिजात से लिया गया है।

(१) माता की ममता

(१)

मेरे प्यारे स-कुशल सुखी और सानंद तो हैं ?
कोई चिंता मलिन उनको तो नहीं है बनाती ?
ऊधो ! छाती वदन पर है म्लानता भी नहीं तो ?
हो जाती हैं हृदय-तल में तो नही वेदनाएँ ?

(२)

मैं थी सारा दिवस मुख को देखते ही बिताती
हो जाती थी व्यथित, उसको म्लान जो देखती थी
हा ! ऐसे ही अब वदन को देखती कौन होगी ?
ऊधो ! माता सदृश ममता अन्य की है न होती !

(३)

प्यारा खाता रुचिर नवनी को बड़े चाव से था
खाते-खाते पुलक पड़ता, नाचता, कूदता था

ये बातें हैं सरस नवनी देखते याद आतीं
हो जाता है मधुर-तर औ स्निग्ध भी दग्धकारी !

(४)

हा ! जो वंशी सरस रव से विश्व को मोहती थी
सो आले में मलिन बन औ मूक होके पड़ी है
जो छिद्रों से अमृत बरसा मूर्ति थी मुग्धता की
सो उन्मत्ता परम विकला उन्मना है बनाती !

(५)

प्यारे ऊधो ! सुरत करता लाल मेरी कभी है ?
क्या होता है न अब उसको ध्यान बूढ़े पिता का ?
रो-रो, हो-हो विकल, अपने वार जो हैं बिताते
हा ! वे सीधे सरल शिशु हैं क्या नहीं याद आते ?

(६)

कैसे वृन्दाविपिन बिसरा ? क्यों लता-बेलि भूली ?
कैसे जी से उतर ब्रज की कुंज-पुंजें गयी हैं ?
कैसे फूले विपुल फल से नम्र भू-जात भूले ?
कैसे भूला विकच तर तो कार्लिदी-कूल-वाला ?

(७)

जा कुंजों में प्रति-दिन जिन्हें चाव से था चराया
जो प्यारी थीं परम ब्रज के लाड़िले को सदा ही
खिन्ना दीना विकल वन में आज जो घूमती हैं
ऊधो ! कैसे हृदय-धन को हाय ! वे धेनु भूलीं ?

(८)

ऐसा प्रायः अब तक मुझे नित्य ही है जनाता
गो, गोपों के सहित वन से सद्य है श्याम आता
भ्रान्ता सी मैं अब तक गयी द्वार पै बार लाखों
हा ! आंखों से न वह बिछुड़ी श्यामली मूर्ति देखी

(९)

पत्रों-पुष्पों रहित विटपी विश्व में हो न कोई
कैसी ही हो सरस सरिता, वारि-शून्या न होवे
ऊधो ! सीपी सदृश न कभी भाग फूटे किसी का
मोती असा रतन अपना हाय ! कोई न खोवे

(१०)

छीना जावे लकुट न कभी वृद्धता में किसी का
ऊधो ! कोई न कल-छल से लाल ले ले किसी का
पूँजी कोई जनम भर की गांठ से खो न देवे
सोने का भी सदन न बिना दीप के हो किसी का

(११)

कोई देखे न सब जग के बीच छाया अंधेरा
ऊधो ! कोई न निज दृग की ज्योति न्यारी गंवावे
रो-रो, हो-हो विकल, न कभी वार बीतें किसी के
पीड़ाएँ हों सकल, न कभी मर्म-बेधी व्यथा हो

(१२)

ऊधो ! होता समय पर जो चारु चिंतामणी है
खो देता है तिमिर उर का जो स्वकीया प्रभा से

जो जी में है सुरसरित-सी स्निग्ध धारा बहाता
बेटा ही है .अवनि-तल में रत्न ऐसा निराला

(१३)

ऐसा प्यारा रतन जिसका हो गया है पराया
सो होवेगी व्यथित कितना, सोच जी में तुम्हीं लो
मेरे जी में अब रह गयी एक ही कामना है
आ के प्यारे कुँवर उजड़ा गेह मेरा बसावें!

(२) कर्मवीर

(१)

देख उत्ताल तरंगों को
कार्य-रत कब घबराता है ?
शक्ति कुंभज-सी धारण कर
पयोनिधि को पी जाता है

(२)

कार्य-पथ का बाधक देखे
वीर पीरुष से भरता है
पर्वतों को पवि बन-बन कर
धूल में परिणत करता है

(३)

राह में अड़ी अड़चनों को
चींटियों सदृश मसलता है
वीर जब बढ़ता है आगे,
काम कर के ही टलता है

(४)

विघ्न हैं विघ्न नहीं करते,
नहीं बाधा बाधा देती
साहसी का देखे साहस
आपदा साँस नहीं लेती

(५)

यत्न कर लोग रत्न कितने
कीचड़ों में से पाते हैं
फल लगा उकठे काठों में
धूल में फूल खिलाते हैं

(६)

बुद्धि के बल से वश में रह
विविध ढंगों में ढलती है
बाल कर दीपक-मालाएँ
दामिनी पंखा झलती है ।

रामचन्द्र शुक्ल

(संवत् १९४१-१९९७)

रामचंद्र शुक्ल का जन्म बस्ती जिले के अगोना नामक गाँव में हुआ था। एफ० ए० तक की शिक्षा प्राप्त करके वे मिर्जापुर के एक स्कूल में इंग्लिश-मास्टर हो गये। सं० १९६५ में वे हिंदी शब्दसागर कोष के सहायक संपादक का काम करने के लिए काशी बुलाये गये। वहाँ उनसे नागरी-प्रचारिणी-सभा की मुखपत्रिका का संपादन भी कई वर्षों तक किया। बाद में हिन्दू विश्वविद्यालय में हिंदी के प्राध्यापक नियुक्त हुए। शुक्लजी का स्वभाव बहुत ही सरल और निष्कपट था। वे सादगी, निरभिमानता और आडंबर-हीनता की साक्षात् मूर्ति थे। पुस्तक-पठन का उन्हें व्यसन-सा था।

शुक्लजी अगाध विद्वान् थे। वे कवि के अतिरिक्त उच्च कोटि के समालोचक और निबंध-लेखक भी थे। समालोचना के क्षेत्र में उनसे युगान्तर उपस्थित किया। तुलसी, सूर, जायसी आदि पर उनसे अपूर्व समालोचनाएँ लिखीं। उनके निबंध हिंदी में अपने ढंग के निराले हैं। उनमें से कुछ तो उत्साह, क्रोध, करुणा, लोभ और प्रीति, श्रद्धा और भक्ति, लज्जा और ग्लानि आदि मनोविकारों पर हैं और कुछ आलोचना-संबंधी।

शुक्लजी ने खड़ी बोली और ब्रज दोनों में सुन्दर कविताएँ लिखी हैं। बचपन से ही प्राकृतिक दृश्यों से उन्हें बहुत प्रेम था। उनकी कविता में प्रकृति का बड़ा ही स्वाभाविक और मनोहर वर्णन पाया जाता है।

शुक्लजी की कुछ महत्त्वपूर्ण रचनाओं के नाम इस प्रकार हैं—
कविता—बुद्ध चरित।

आलोचना—गोस्वामी तुलसीदास, सूरदास, मलिक मुहम्मद जायसी।

आलोचना-तत्त्व--रस-मीमांसा ।

निर्बंध-संग्रह--चिन्तामणि (दो भाग)

अन्य --हिन्दी साहित्य का इतिहास ।

संकलित अंश बुद्धचरित-काव्य से लिया गया है ।

(१) बुद्ध का वन-विहार

(१)

चढ़े रथ पै दोउ जात चले
 वन बाग तड़ाग लसै चहुँ ओर
 लसे नव पल्लव सों लहरै
 लहि कै तरु मंद समीर-भकोर
 कहूँ नव किसुक-जाल सौँ लाल
 लखात घने वन-खंड के छोर
 परै जहँ खेत, सुनात तहाँ
 श्रम-लीन किसानन को कल रोर

(२)

लिये खरिहानन मे सुथरे
 पथ पार पयार के ढूह लखात
 मढे नव मंजुल मौरन सों
 सहकार न अंगन माँहि समात
 भरी छवि सों छलकाय रहे,
 मृदु सौरभ ले बगरावत बात
 चरै बहु ढोर कछारन में,
 जहँ गावत ग्वाल, नचावत गात ।

(३)

लदे कलियान औ फूलन सों
 कचनार रहे कहूँ डार नवाय
 भरो जहँ नीर, धरा रस भीजि कै
 दीनी है दूब की गोट चढ़ाय
 रह्यो कल गान बिहंगन को
 अति मोद भरयो चहुँ ओर सों आय
 कढ़ै लघु जंतु अनेक, भगै
 पुनि पास की भाड़िन को भहराय

(४)

डोलत हैं बहु भृंग-पतंग
 सरीसृप मंगल मोद मनाय
 भागत भाड़िन सों कढ़ि तीतर,
 पास कहूँ कछु आहट पाय
 बागन के फल पै कहूँ कीर
 हैं भागत चोंच चलाय-चलाय
 धावत है धरिबे हित कीटन
 चाष घनी चित चाह चढ़ाय

(५)

ककि उठै कबहूँ कल कंठ सों
 कोकिल कानन में रस नाय
 गीघ गिरै छिति पै कछु देखत,
 चील रहीं नभ में मँडराय

श्यामल रेख धरे तन पै
 इत सौं उत दौरि कै जाति गिलाय
 निर्मल ताल के तीर कहूँ वक
 बैठे हैं मीन पै ध्यान लगाय

(६)

चित्रित मंदिर पै चढ़ि मोर
 रह्यो निज चित्रित पंग्व दिखाय
 व्याह के बाजन बाजन की धुनि
 दूर के गाँव में देति मुनाय
 वस्तुन सों सब भाँति समृद्धि
 रही बहु रूपन में दरसाय
 देखि इतों मुख-माज कुमार
 रह्यो हिय म अति ही हर्खाय ।

मैथिलीशरण गुप्त

(मं वत् १९४३—)

गुप्तजी का जन्म भाँसी जिले के चिरगाँव नामक स्थान में हुआ। आपके पिता बड़े भारी राम-भक्त थे और कवि भी थे। पुत्र ने दोनों गुण पिता से पाये। महावीरप्रसाद द्विवेदी के प्रोत्साहन से आपकी प्रतिभा विकसित हुई। आप हिंदी के सबसे प्रसिद्ध कवि हैं। आपकी कविता का जनता ने बहुत आदर किया। आपकी भारत-भारती बहुत दिनों तक नवयुवकों का कंठ-हार रही।

गुप्तजी की कविता उच्च आदर्शों और पवित्र भावों से भरी हुई होती है। आप 'हिन्दू संस्कृति की सात्त्विक भावनाओं के सर्वाधिक सफल कवि हैं।' आपकी आरंभकालीन अनेक रचनाओं में देशभक्ति और राष्ट्रीयता के भावों की सुंदर व्यंजना हुई है। गुप्तजी भाषा की शुद्धता का बड़ा ध्यान रखते हैं। भाषा पर आपका अपरिमित अधिकार है। आप अनुवादक भी बहुत अच्छे हैं।

आपकी रचनाओं की संख्या बहुत बड़ी है। उनमें से कुछ के नाम ये हैं:—

मौलिक—साकेत, यशोधरा, द्वापर, जयद्रथ वध, शक्ति,
पंचवटी, नहुष, कुणाल, भारत-भारती, मंगल-घट।

अनुवाद—मेघनादवध, पलासी का युद्ध, विरहिणी ब्रजांगना,
वीरांगना, उमर खय्याम की रुबाइयाँ।

(१) कैकेयी का कोप

धरा पर धर्मादर्श-निकेत
धन्य है स्वर्ग सदृश साकेत ।
बड़े क्यों आज न हर्षोद्रेक ?
राम का कल होगा अभिषेक ॥१॥

दशों दिग्पालों के गुण केन्द्र
धन्य हैं दशरथ मही-महेन्द्र ।
त्रिवेणी तुल्य रानियाँ तीन
बहाती सुख-प्रवाह नवीन ॥२॥

आम्रवन सा फूला सब ओर,
मोद का आज न ओर न छोर ।
किंतु हा ! फला न सुमन-क्षेत्र,
कीट बन गये मंथरा-नेत्र ॥३॥

देखकर कैकेयी यह हाल
आप उससे बोली तत्काल—
अरी ! तू क्यों उदास है आज,
वत्स जब कल होगा युवराज ? ॥४॥

मंथरा बोली निस्संकोच—
आप को भी तो है कुछ सोच ।
हँसी रानी सुनकर वह बात,
उठी अनुपम आभा अवदात ॥५॥

सोच है मुझ को निस्संदेह,
भरत जो है मामा के गेह ।

सफल करके निज निर्मल दृष्टि,
देख वह सका न यह मुख मृष्टि ॥६॥

ठोककर अपना क्रूर कपाल,
जताकर यही कि, फूटा भाल ।
किकरी ने तब कहा नुरन्त—
हो गया भोल्लेपन का अन्त ! ॥७॥

न समझी कैकेयी वह बात,
कहा उसने—यह क्या उत्पात !
वचन क्यों कहती है तू वाम ?
नही क्या मेरा बेटा राम ? ॥८॥

और वे औरस भग्न कुमार ?—
कुदासी बोली कर फटकार ।
कहा रानी ने पाकर खेद—
भला दोनों में है क्या भेद ? ॥९॥

भेद ?—दामी ने कहा सतर्क—
सबरे दिखला देगा अर्क ।
राजमाता होंगी जय एक,
दूसरी देखेंगी अभिषेक ॥१०॥

रोकर कैकेयी ने रोष
कहा—देती है किसको दोष ?
राम की माँ क्या कल या आज
कहेगा मुझे न लोक-समाज ? ॥११॥

कहा दासी ने धीरज त्याग—
 लगे इस मेरे मुंह में आग !
 मुझे क्या, मैं होती हूँ कौन ?
 नहीं रहती हूँ फिर क्यों मौन ? ॥१२॥

देखकर किंतु स्वामि-हित-घात
 निकल ही जाती है कुछ बात ।
 इधर भोली हूँ जैसी आप,
 समझती सब को वैसी आप ॥१३॥

नही तो यह सीधा षड्यंत्र
 रचा क्यों जाता यहाँ स्वतंत्र ?
 महारानी कौशल्या आज
 सहज सज लेती क्या सब साज ? ॥१४॥

कहा रानी ने, क्या षड्यंत्र ?
 वचन हैं तेरे मायिक मंत्र ।
 हुई जाती हूँ मैं उद्भ्रान्त,
 खोलकर कह तू सब वृत्तान्त ॥१५॥

मंथरा ने फिर ठोका भाल—
 शेष है अब भी क्या कुछ हाल ?
 सरलता भी ऐसी है व्यर्थ,
 समझ जो सके न अर्थार्थ ॥१६॥

भरत को करके घर से त्याज्य,
 राम को देते हैं नृप राज्य ।

भरत से सुत पर भी संदेह ?
बुलाया तक न उन्हें जो गेह ! ॥१७॥

कहा कैकेयी ने सक्रोध—
दूर हो दूर, अभी, निर्बोध !
सामने से हट, अधिक न बोल,
द्विजिन्हें, रस में विष मत घोल ॥१८॥

उड़ाती है तू घर में कीच,
नीच ही होते हैं वस नीच ।
हमारे आपस के व्यवहार
कहाँ से, समझे तू अनुदार ? ॥१९॥

हुआ भ्रू-कुंचित भाल विशाल,
कपोलों पर हिलते थे बाल ।
प्रकट थी मानो शासन-नीति,
मंथरा सहमी देख सभीति ॥२०॥

तीक्ष्ण थे लोचन अटल अडोल,
लाल थे लाली भरे कपोल ।
न दासी देख सकी उस ओर,
जला दे कहीं न कोप कठोर ! ॥२१॥

किंतु वह हटी न अपने आप,
खड़ी ही रही नम्र चुपचाप ।
अंत में बोली स्वर सा साध—
क्षमा हो मेरा यह अपराध ! ॥२२॥

स्वामि-सम्मुख सेवक या भृत्य
आप ही अपराधी हैं नित्य ।
दंड दें कुछ भी आप समर्थ,
कहा क्या मैंने अपने अर्थ ? ॥२३॥

समझ में आया जो कुछ मर्म,
उसे कहना था मेरा धर्म ।
न था यह मेरा अपना कृत्य,
भर्तृ हैं भर्तृ, भृत्य हैं भृत्य ॥२४॥

मही पर अपना माथा टेक,
भरा था जिसमें अति अविवेक ।
किया दासी ने उसे प्रणाम,
और वह चली गयी अविराम ॥२५॥

.....

गयी दासी, पर उसकी बात
दे गयी मानो कुछ आघात ।
भरत से सुत पर भी संदेह !
बुलाया तक न उसे जो गेह ! ॥२६॥

पवन भी मानो उसी प्रकार
शून्य में भरने लगी पुकार—
भरत से सुत पर भी संदेह !
बुलाया तक न उसे जो गेह ! ॥२७॥

गूँजते थे रानी के कान,
तीर सी लगती थी वह तान—

भरत से सुत पर भी संदेह !
बुलाया तक न उसे जो गेह ! ॥२८॥

मूर्ति सी बनी हुई उस ठौर
खड़ी रह सकी न अब वह ओर ।
गयी शयनालय में तत्काल,
गभीरा सरिता-सी थी चाल ॥२९॥

न सहकर मानो तनु का भार
लेटकर करने लगी विचार ।
कहा तब उसने—हे भगवान !
आज क्या सुनते हैं ये कान ! ॥३०॥

मनोमंदिर की मेरी शान्ति
बनी जाती है क्यों उत्क्रांति ?
लगा दी किसने आकर आग ?
कहाँ था तू, संशय के नाग ? ॥३१॥

नाथ ! कैकेयी के वर वित्त !
चीरकर देखो उसका चित्त ।
स्वार्थ का वहाँ नहीं है लेश,
बसे हो एक तुम्हीं, प्राणेश ! ॥३२॥

सदा थे तुम भी परमोदार,
आ क्यों सहसा आज विकार ?
भरत से सुत पर भी संदेह ?
बुलाया तक न उसे जो गेह ! ॥३३॥

न थी हम माँ-बेटे की चाह,
आह ! तो खुली न थी क्या राह ?
मुझे भी भाई के घर , नाथ,
भेज क्यों दिया न सुत के साथ ? ॥३४॥

राज्य का अधिकारी है ज्येष्ठ,
राम में गुण भी हैं सब श्रेष्ठ ।
भला, फिर भी क्या मेरा वत्स
शान्त रस में बनता बीभत्स ? ॥३५॥

तुम्हारा अनुज भरत, हे राम
नहीं है क्या नितांत निष्काम ?
जानते जितना तुम, कुल-धन्य,
भरत को कौन जानता अन्य ? ॥३६॥

भरत ! रे भरत शील-समुदाय !
गर्भ में आकर मेरे, हाय !
हुआ यदि तू भी संशय-पात्र,
दग्ध हो तो यह मेरा गात्र ! ॥३७॥

चली जा पृथिवी तू पाताल,
आप को संशय में मत डाल ।
कहीं तुझ पर होता विश्वास
भरत में पहले करता वास ॥३८॥

अरे विश्वास विश्व विख्यात !
किया है किसने तेरा ' घात ' ?

भरत ने ! वह है तेरी मूर्ति,
राम ने ? वह है प्राण स्फूर्ति ॥३९॥

देव ने ? वे हैं सदय सदैव,
दैव ने ? हा घातक दुर्देव !
तुझे क्या, हे अदृष्ट, है इष्ट ?
सूर्यकुल का हो आज अनिष्ट ? ॥४०॥

बाँध सकता है कहाँ परन्तु
राघवों को अदृष्ट का तन्तु ?
भाग्यवश रहते हैं बस दीन,
वीर रखते हैं उसे अधीन ॥४१॥

शाय ! तब तूने अरे अदृष्ट,
किया क्या जीजी को आकृष्ट ?
ज्ञानकर अबला, अपना जाल,
देया है उस सरला पर डाल ॥४२॥

किंतु हा ! यह कैसा सारल्य,
सालता है जो बनकर शल्य ?
भरत से सुत पर भी संदेह ?
बुलाया तक न उसे जो गेह ! ॥४३॥

बहन कौशल्ये, कह दो सत्य,
भरत था मेरा कभी अपत्य ?
पुत्र था कभी तुम्हारा राम ?
हाय रे ! फिर भी यह परिणाम ? ॥४४॥

किंतु चाहे जो कुछ हो जाय,
सहूँगी कभी न यह अन्याय।
करूँगी मैं इस का प्रतिकार,
पलट जावे चाहे संसार ॥४५॥

नहीं है कैकेयी निर्बोध,
पुत्र का भूले जो प्रतिशोध।
कहें सब मुझको लोभासक्त,
किंतु, सुत, हूँ तो न विरक्त ॥४६॥

भरत की माँ हो गयी अधीर,
क्षोभ से जलने लगा शरीर।
दाह से भरा सौतिया डाह
बहाता है बस विषप्रवाह ॥४७॥

मानिनी कैकेयी का कोप
बुद्धि का करने लगा विलोप।
और रह सकी न अब वह शान्त,
उठी आँधी सी होकर भ्रान्त ॥४८॥

एडियों तक आ छूटे केश,
हुआ देवी का दुर्गा-वेश।
पड़ा तब जिस पदार्थ पर हस्त,
उसे कर डाला अस्तव्यस्त ॥४९॥

तोड़कर फेंक सब शृंगार,
अश्रु-मय से थे मुक्ता-हार।

मत्त करिणी सी दलकर फूल
घूमने लगी आपको भूल ॥५०॥

चूर कर डाले सुंदर चित्र,
हो गये वे भी आज अमित्र।
बताते थे आ आकर श्वास
हृदय का ईर्ष्या-बन्धि-विकास ॥५१॥

पतन का पाते हुए प्रहार
पात्र करते थे हाहाकार।
दोष किसका है !, किस पर रोष ?
किंतु यदि अब भी हो परितोष ! ५२॥

.....
.....

अन्त में सारे अंग समेट,
गयी वह वहीं भूमि पर लेट।
छोड़ती थी जब तब हुंकार,
चुटीली फणिनी सी फुंकार ॥५३॥

(२) भारतवर्ष का अतीत गौरव

(१)

भूगोल का गौरव, प्रकृति का पुण्य लीला-स्थल कहाँ ?
फैला मनोहर गिरि हिमालय और गंगा-जल जहाँ ?
संपूर्ण देशों से अधिक किस देश का उत्कर्ष है ?
उसका कि जो ऋषि-भूमि है, वह कौन ? भारतवर्ष है।

(२)

हाँ, वृद्ध भारतवर्ष ही संसार का सिरमौर है
ऐसा पुरातन देश कोई विश्व में क्या और है ?
भगवान की भव-भूतियों का यह प्रथम भंडार है
विधि ने किया नर-सृष्टि का पहले यहीं विस्तार है

(३)

यह पुण्य-भूमि प्रसिद्ध है, इसके निवासी आर्य हैं
विद्या, कला, कौशल्य सब के जो प्रथम आचार्य हैं
संतान उनकी आज यद्यपि हम अधोगति में पड़े
पर चिन्ह उनकी उच्चता के आज भी कुछ हैं खड़े

(४)

शुभ शान्ति-मय शोभा जहाँ भव-बंधनों को खोलती
हिल-मिल मृगों से खेल करती सिंहनी थी डोलती
स्वर्गीय भावों से भरे ऋषि होम करते थे जहाँ
उन ऋषिगणों से ही हमारा था हुआ उद्भव यहाँ

(५)

उन पूर्वजों की कीर्ति का वर्णन अतीव अपार है
गाते हमीं गुण हैं न उनके, गा रहा संसार है
बे धर्म पर करते निछावर तृण समान शरीर थे
उनसे बही गंभीर थे वर वीर थे, ध्रुव धीर थे

(६)

उनके अलौकिक दर्शनों से दूर होता पाप था,
अति पुण्य मिलता था, तथा मिटता हृदय का ताप था ।

उपदेश उनके शांतिकारक थे निवारक शोक के,
सब लोक उनका भक्त था, वे थे हितैषी लोक के ॥

(७)

वे ईशनियमों की कभी अवहेलना करते न थे,
सन्मार्ग में चलते हुए वे विघ्न से डरते न थे।
अपने लिए वे दूसरों का अहित कभी करते न थे,
चिंता-प्रपूर्ण अशांति-पूर्वक वे कभी मरते न थे ॥

(८)

वे मोह-बंधन-मुक्त थे, स्वच्छंद थे, स्वाधीन थे,
संपूर्ण-सुख-संयुक्त थे, वे शांति-शिखरासीन थे।
मन से वचन से कर्म से वे प्रभु-भजन में लीन थे,
विख्यात ब्रह्मानंद-नद के वे मनोहर मीन थे ॥

(९)

वे आर्य ही थे, जो कभी अपने लिए जीते न थे,
वे स्वार्थ-वश हो मोह की मदिरा कभी पीते न थे।
संसार के उपकार-हित जब जन्म लेते थे सभी,
निश्चेष्ट होकर किस तरह वे बैठ सकते थे कभी ?

(१०)

आदर्श जन संसार में इतने कहाँ पर हैं हुए ?
सत्कार्य-भूषण आर्य-गण जितने यहाँ पर हैं हुए।
हैं रह गए यद्यपि हमारे गीत आज रहे-सहै,
पर दूसरों के वचन भी साक्षी हमारे हो रहे ॥

(११)

लक्ष्मी नहीं, सर्वस्व जावे, सत्य छोड़ेंगे नहीं,
अंधे बने, पर सत्य से संबंध तोड़ेंगे नहीं।
निज सुत-मरण स्वीकार है पर वचन की रक्षा रहे,
है कौन जो उन पूर्वजों के शील की मीमा कहै ?॥

(१२)

सर्वस्व कर के दान जो चालीस दिन भूखे रहे,
अपने अतिथि-सत्कार में फिर भी न जो ह्मके रहे।
पर-तृप्ति कर निज-तृप्ति मानी रंतिदेव नरेश ने,
ऐसे अतिथि-संतोष कर पैदा किये किस देश ने।

(१३)

आमिष दिया अपना जिन्होंने श्येन-भक्षण के लिए,
जो बिक गये चांडाल के घर सत्य-रक्षण के लिए।
दे दीं जिन्होंने अस्थियाँ परमार्थ-हित जानी जहाँ,
शिवि, हरिश्चन्द्र, दधीचि से होते रहे दानी कहाँ॥

(१४)

सत्पुत्र पुरु मे थे, जिन्होंने तात-हित सब कुछ सहा।
भाई भरत से थे जिन्होंने राज्य भी त्यागा अहा !
जो धीरता के, वीरता के, प्रौढ़तम पालक हुए,
प्रह्लाद, ध्रुव, कुश लव तथा अभिमन्यु-सम बालक हुए॥

(१५)

वह भीष्म का इन्द्रिय-दमन, उनकी धरा सी धीरता,
वह शील उनका, और उनकी वीरता, गंभीरता ।
उनकी सरलता और उनकी वह विशाल-विवेकता,
है एक जन के अनुकरण में सब गुणों की एकता ॥

माखनलाल चतुर्वेदी

‘एक भारतीय आत्मा’

(संवत् १९४५—)

आपका जन्म होशंगाबाद जिले के बाबई गाँव में हुआ। नार्मल परीक्षा पास करके आप अध्यापक बने। अध्यापन करने के साथ-साथ संस्कृत, अंग्रेजी, मराठी, गुजराती तथा बंगला का अध्ययन भी किया। कुछ समय पश्चात् आपने अध्यापकी छोड़ दी और पत्रकार का व्यवसाय अपनाया और ‘कर्मवीर’ नाम का पत्र निकाला। ‘कर्मवीर’ के संपादक के रूप में आपकी बड़ी प्रसिद्धि हुई। ‘प्रभा’ और ‘प्रताप’ पत्रों का संपादन भी कुछ समय तक किया। राष्ट्रीय आंदोलनों में भाग लेने के कारण आपको कई बार कारागृह जाना पड़ा। आपकी अनेक रचनायें जेल के भीतर लिखी गयी हैं। आपकी रचनाओं के नाम इस प्रकार हैं:—

कविता-संग्रह—हिमकिरीटिनी, हिमतरंगिणी

गद्य काव्य—साहित्य देवता

नाटक—कृष्णार्जुन-युद्ध

कहानी-संग्रह—वनवासी

आप राष्ट्रीय विचारों के कवि हैं। आपकी कविताओं में राष्ट्रीय भावनाओं की प्रधानता रहती है। आपकी भाषा में उर्दू शब्दों का प्रयोग हुआ है। संकलित कविता में राष्ट्र के लिए जीवन का उत्सर्ग करनेवाले वीरों की कथा है जो अपने प्राणों की नींव पर राष्ट्र का भवन खड़ा करते हैं।

(१) पुष्प की अभिलाषा

(१)

चाह नहीं, मैं सुर-बाला के
गहनों में गूँथा जाऊँ
चाह नहीं, प्रेमी-माला में
विध प्यारी को ललचाऊँ

(२)

चाह नहीं, सम्राटों के शव
पर हे हरि ! डाला जाऊँ
चाह नहीं, देवों के सिर पर
चढ़ूँ, भाग्य पर इठलाऊँ

(३)

मुझे ताँड़ लेना वन-माली !
उस पथ में तुम देना फेंक
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने
जिस पथ जावें वीर अनेक !

(२) बलिदान

(१)

बीज जब मिट्टी में मिल जाय
वृक्ष तब उगता है हे मित्र !
कलम की स्याही गिरती जाय
पत्र पर उठता जाता चित्र

नदी-नद सब जल के भंडार
 चढ़ा देते हैं अपना रक्त
 अहा ! तब कही मधुरता-बूंद
 मेघ से पाते वर्षा-भक्त
 सफलता पायी अथवा नहीं
 उन्हें क्या ज्ञात, दे चुके प्राण
 विश्व को चाहिए उच्च विचार !
 नहीं, केवल अपना बलिदान

(२)

बिगुल बज गया चली सब मैन्य
 धरा भी होने लगी अधीर
 खाड्यौं खोदीं रिपु ने हाथ !
 पार हों कैसे सैनिक वीर ?
 'पूर दें इनको मेरे शूर
 शरीरों से', दे दिये शरीर
 इधर यों सेनापति ने कहा
 उधर दब गये सहस्रों वीर
 समय पर किया शत्रु का नाश
 शेष ने पाया आहा ! त्राण
 शेष वीरों ने छोड़ी तान
 अहा बलिदान ! धन्य बलिदान !

जयशंकर 'प्रसाद'

(संवत् १९४६-१९९८)

आपका जन्म सं० १९४६ में काशी में हुआ। इनके पिता-पितामह सुंधनी-साहु के नाम से प्रसिद्ध थे और बड़े भारी व्यापारी एवं दानी थे। आपने मिडिल कक्षा तक शिक्षा पायी, पीछे घर पर ही हिंदी, संस्कृत, फारसी, अंग्रेजी आदि का अध्ययन किया। कविता से आपको बचपन से ही प्रेम था।

प्रसाद की प्रतिभा बहु-मुखी थी। साहित्य के विविध अंगों को आपने छुआ और सब में पूर्ण सफलता प्राप्त की। आप हिंदी के सर्वश्रेष्ठ नाटककार थे। इसके अतिरिक्त कवि, निबंधकार, कहानी-लेखक और उपन्यास-लेखक भी थे और सभी में आपकी गणना सर्वश्रेष्ठ लेखकों में होती है। आपका 'कामायनी' महाकाव्य इस युग की एक महान कृति है।

हिंदी के नव-युग-प्रवर्तकों में आप अग्रगण्य हैं। अतुकान्त कविता और छायावाद की कविता का सूत्रपात आपके ही द्वारा हुआ। आप पहले ब्रज-भाषा में लिखते थे फिर खड़ीबोली में लिखने लगे। आपकी भाषा संस्कृत-प्रधान है।

आपकी प्रमुख रचनाओं के नाम ये हैं:—

काव्य—कामायनी, आंसू, लहर, भरना, कानन कुसुम, चित्राधार,
प्रेमपथिक, करुणालय, महाराणा का महत्त्व।

नाटक—जनमेजय का नागयज्ञ, अजातशत्रु, चंद्रगुप्त मौर्य, ध्रुव
स्वामिनी स्कंदगुप्त, विशाख, राज्यश्री, एक घूंट, कामना,
सज्जन, प्रायश्चित्त।

उपन्यास—कंकाल, तितली, इरावती ।

कहानी-संग्रह—छाया, प्रतिध्वनि, आकाशदीप, आंधी, इन्द्रजाल ।

निबंध—काव्य और कला ।

(१) अभियान-गीत

हिमाद्रि-तुंग-शृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती
स्वयं-प्रभा समुज्ज्वल स्वतंत्रता पुकारती
अमर्त्य वीर-पुत्र हो
दृढ-प्रतिज्ञ सोच लो
प्रशस्त पुण्य-पथ है
बढ़े चलो ! बढ़े चलो !!

असंख्य कीर्ति-रश्मियाँ विकीर्ण दिव्य दाह सी
सपूत मातृ-भूमि के रुको न शूर साहसी !
अराति-सैन्य-सिंघु में
सु वाडवाग्नि से जलो
प्रवीर हो जयी बनो
बढ़े चलो ! बढ़े चलो !!

(२) महा-प्रलय

हाहाकार हुआ क्रंदनमय, कठिन कुलिश होत थे चूर ।
हुआ दिगंत बधिर, भीषण रव बारबार होता था क्रूर ॥१॥
दिग्दाहों से धूम उठे, या जलधर उठे क्षितिज-तट के ।
सघन गगन में भीम प्रकंपन, भंभा के चलते भटके ॥२॥
अंधकार में मलिन मित्र की धुंधली आभा लीन हुई ।
वरुण व्यस्त थे, घनी कालिमा स्तर-स्तर जमती पीन हुई ॥३॥

पंचभूत का भैरव मिश्रण, शंपाओं के शकल-निपात ।
उल्का लेकर अमर शक्तियाँ खोज रहीं ज्यों खोश प्रात ॥४॥

बारबार उस भीषण रव से कँपती धरती देख विशेष ।
मानो नील व्योम उतरा हो आलिंगन के हेतु अशेष ॥५॥

उघर गरजतीं सिंधु-लहरियाँ, कुटिल काल के जालों सी ।
चली आ रही फेन उगलती, फन फैलाये व्यालों सी ॥६॥

धँसती धरा, धधकती ज्वाला, ज्वालामुखियों के निःश्वास ।
और संकुचित क्रमगः उसके अवयव का होता था हास ॥७॥

सबल तरंगाघातों से उस क्रुद्ध सिंधु के, विचलित सी
व्यस्त महा कच्छप सी धरणी ऊभचूभ थी विकलित सी ॥८॥

बढ़ने लगा विलास-वेग सा वह अति भैरव जल-संघात ।
तरल तिमिर से प्रलय-पवन का होता आलिंगन प्रतिघात ॥९॥

वेला क्षण-क्षण निकट आ रही, क्षितिज क्षीण, फिर लीन हुआ ।
उदधि डुबाकर अखिल धरा को बस मर्यादा-हीन हुआ ॥१०॥

करका क्रंदन करती गिरती, और कुचलना था सब का ।
पंचभूत का यह तांडव-मय नृत्य हो रहा था कब का ॥११॥

....

एक नाव थी, और न उसमें डूँड़े लगते, या पतवार ।
तरल तरंगों में उठ-गिरकर बहती पगली बारंबार ॥१२॥

लगते प्रबल थपेड़े, धुंधले तट का था कुछ पता नहीं ।
कातरता से भरी निराशा देख नियति पथ बनी वहीं ॥१३॥

लहरें व्योम चूमती उठती, चपलाएँ असंख्य नचती ।
गरल जलद की खड़ी झड़ी में बूँदें निज संसृति रचती ॥१४॥

चपलाएँ उस जलधि विश्व में स्वयं, चमत्कृत होती थीं ।
ज्यों विराट वाड़व-ज्वालाएँ खंड-खंड हो रोती थीं ॥१५॥

जलनिधि के तल वासी जलचर विकल निकलते उतराते ।
हुआ विलोडित गृह, तब प्राणी कौन कहें! कब सुख पाते ? ॥१६॥

घनीभूत हो उठे पवन, फिर, श्वासों की गति होती रुद्ध ।
और चेतना थी बिलखाती, दृष्टि विफल होती थी क्रुद्ध ॥१७॥

उस विराट आलोड़न में ग्रह-तारा बुदबुद से लगते ।
प्रखर प्रलय-पावस में जगमग ज्योतिरिगणों से जगते ॥१८॥

प्रहर, दिवस कितने ही बीते, इस को कौन बता सकता ?
इनके सूचक उपकरणों का चिन्ह न कोई पा सकता ॥१९॥



गोपालशरण सिंह

(मवन् १९८८—)

आप रीवां राज्य के नयीगढ़ी ठिकाने के अधिपति हैं। आपने संस्कृत तथा अंग्रेजी की शिक्षा प्राप्त की। कविता से आपको बचपन से ही प्रेम था। बीस वर्ष की अवस्था से आपने कविता करना आरंभ किया। आपकी कविताओं के नीचे लिखे संग्रह प्रकाशित हुए हैं—

माधवी, कादंबिनी, मानवी, ज्योतिष्मती, संचिता, सुमना, सागरिका, विश्वगीत, आधुनिक कवि भाग ४।

आपने प्राचीन और आधुनिक दोनों प्रकार के छंदों में रचना की है। आपकी भाषा माधुर्य-गुण से संपन्न है। सरल और सरस होने के कारण आपकी कविताएँ विशेष लोकप्रिय हुईं।

संवोधन

देख आँखें खोल मानव !

देख आँखें खोल

(१)

वन गयी पशु-तुल्य है निष्ठुर मनुज की सृष्टि
हो रही मृदु-पल्लवों पर है उपल की वृष्टि
हो रहा है न्याय-सत्ता का जगत में लोप
विष-विटप का हो रहा है विश्व में आरोप
क्या रहेगा मौन ही तू
बोल मानव ! बोल

(२)

जानता हूँ, इष्ट है अपना तुझे उत्कर्ष
 किंतु क्या तू है बचा सकता नहीं मंत्रर्ष ?
 क्या न है संभव सभी नर कर परस्पर प्यार
 सूत्र में गुंथ एक ही बन जायँ हीरक-हार ?
 स्वार्थ को जग-हित तुला पर
 तोल मानव ! तोल

(३)

लड़ रहा है विश्व में विकराल अत्याचार
 रह गया है निर्बलों को कुछ नहीं आधार
 देवता है प्राण-पीड़ा से विकल मंसार
 बह रही है अश्रु में मिल कर रुधिर की धार
 भूल मानवता-विभव का
 तू न मानव ! मोल



सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

(संवत् १९५५—)

'निराला' का जन्म बंगाल के मेदिनीपुर जिले के अन्तर्गत महिषादल राज्य में हुआ था जहाँ आपके पिता नौकर थे। आपने मैट्रिक तक शिक्षा प्राप्त की। संस्कृत और बंगला का भी आपको अच्छा ज्ञान है। 'समन्वय' नामक पत्र का संपादन आपने कई वर्षों तक किया था।

'निराला' जी हिन्दी के निराले कवि हैं। हिंदी के नव-युग-प्रवर्तक कवियों में आपकी गिनती की जाती है। प्रसादजी की भांति आप भी रहस्यवादी और छायावादी कवि हैं। आपकी पिछली रचनाएँ प्रगतिवादी शैली की हैं। आपकी भाषा संस्कृत-गर्भित होती है।

'निराला' जी की एक प्रमुख विशेषता उनका निराला छंद है जिसके चरणों में मात्राओं या वर्णों की कोई निश्चित संख्या नहीं होती; कोई चरण बड़ा है तो कोई छोटा। परन्तु उसमें गति अवश्य वर्तमान रहती है जो उसे गद्य से भिन्न करती है। पीछे के बहुत से कवियों ने आपके इस छंद को अपनाया। आपकी अनेक कविताएँ नियमित छंदों में भी हैं।

'निराला' जी कवि होने के अतिरिक्त कहानीकार, उपन्यास-लेखक और निबंध लेखक भी हैं। आपकी शैली में ओज गुण विशेष रूप से पाया जाता है।

आपकी कुछ रचनाओं के नाम ये हैं—

कविता—अनामिका, परिमल, गीतिका, बेला, अणिमा, नये पत्ते,
अपरा, कुरुरमुत्ता, तुलसीदास।

गद्य—प्रबंध पद्य, रवीन्द्र कविता कानन आदि।

उपन्यास—बिल्लेसुर बकरिहा, कुल्लीभाट, निरुपमा, चमेली आदि ।

कहानी—चतुरी चमार, सुकुल की बीबी आदि ।

दान

(१)

वासंती की गोद में तरुण
 सोहता स्वस्थ-मुख बालारुण;
 किसलयों के अधर यौवन-मद
 रक्ताभ; मंजु उड़ते षट्पद;
 खुलती कलियों से कलियों पर
 नव आशा, नवल स्पंद, भर भर;
 व्यंजित सुख का जो मधु गुंजन
 वह पुंजीकृत वन-वन उपवन;
 हेम-हार पहने अमलतास,
 हँसता रक्तांबर धर पलास;
 कुंद के शेष पूजार्घ्यदान,
 मल्लिका प्रथम यौवन शयान ।
 निकला पहला अरविंद आज
 देखता अनिन्द्य रहस्य-साज;
 सौरभ-वसना समीर बहती
 कानों में प्राणों की कहती;
 गोमती क्षीण-कटि नटी नवल
 नृत्य पर, मधुर-आवेश-चपल ।

(२)

मैं प्रातः पर्यटनार्थ चला
लौटा आ पुल पर खड़ा हुआ
सोचा—‘विश्व का नियम निश्चल
जो जैसा उसको वैसा फल
देती यह प्रकृति स्वयं सदया,
सोचने को न कुछ रहा नया;
मौंदर्य, गीत, बहुवर्ण, गंध
भाषा भावों के छंद-बंध
और भी उच्चतर जो विलास
प्राकृतिक दान, वे संप्रयास
या अनायास आते हैं सब
सब में है श्रेष्ठ धन्य मोनव’।

(३)

फिर देखा—उस पुल के ऊपर
बहु-संख्यक बैठे हैं बानर;
एक ओर पथ के, कृष्णकाय
कंकाल-शेष नर मृत्यु-प्राय
बैठा सशरीर दैन्य-दुर्बल,
भिक्षा को उठी दृष्टि निश्चल;
अति क्षीण कंठ, है तीव्र श्वास,
जीता ज्यों जीवन से उदास।
ढोता जो वह, कौन सा शाप ?
भोगता कठिन, कौन सा पाप ?

यह प्रश्न सदा ही है पथ पर,
पर सदा मौन इसका उत्तर।
जो बड़ी दया का उदाहरण
वह पैसा एक, उपायकरण !
मैंने भुक् नीचे को देखा
तो भलकी आशा की रेखा;
विप्रवर स्नान कर चढ़ा सलिल
शिव पर दूर्वादिल तँडुल तिल,
लेकर भोली आये ऊपर;
देख कर चले तत्पर वानर।

(४)

द्विज राम-भक्त, भक्ति की आश
भजते शिव को बारहो मास,
कर रामायण का पारायण
जपते हैं श्रीमन् नारायण;
दुख पाते जब होते अनाथ
कहते कपियों से जोड़ हाथ
करते प्रतिदिन सरिता-मज्जन
मेरे पड़ोस के वे सज्जन।
भोली से पुए निकाल लिये
बढ़ते कपियों के हाथ दिये;
देखा भी नहीं उधर फिरकर
जिस ओर रहा वह भिक्षु इतर;
चिल्लाया किया दूर दानव;
बोला मैं—‘धन्य श्रेष्ठ मानव !

सुमित्रानन्दन पंत

(संवत् १९५७—)

पंतजी अलमोड़े के पर्वतीय ब्राह्मण हैं। आपने इंटरमीजियट तक शिक्षा प्राप्त की। कविता से आपको बचपन से ही प्रेम था और आप विद्यार्थी अवस्था से ही कविता करने लगे थे। आप प्रकृति की गोद में पलने वाले सुकुमार कवि हैं।

पंतजीकी रचनाओं के नाम इस प्रकार हैं—

कविता संग्रह—(१) वीणा, (२) ग्रंथि, (३) पल्लव, (४) गुंजन, (५) युगांत, (६) युगवाणी, (७) ग्राम्या, (८) स्वर्ण-किरण, (९) स्वर्णाधूलि, (१०) युगपथ, (११) उत्तरा, (१२) आधुनिक कवि भाग १, (१३) पल्लविनी।

नाटक—ज्योत्स्ना।

कहानी—पांच कहानियां।

अनुवाद—मधुज्वाल।

पंतजी की भाषा संस्कृत-गर्भित होती है। उसमें माधुर्य गुण विशेष रूप से मिलता है। आपकी प्रारंभिक रचनाओं में प्रकृति के विविध रूपों के कल्पना-प्रधान चित्र हैं। पीछे आप मार्क्सवाद से प्रभावित हुए। आपकी पिछली रचनाओं पर अरविंद घोष का प्रभाव पड़ा है। आप गद्य भी बहुत सुन्दर लिखते हैं।

गूँजे जयध्वनि से आसमान
 गूँजे जयध्वनि से आसमान—
 सब मानव मानव हैं समान !
 (१)

निज कौशल-मति-इच्छानुकूल
 सब कर्म-निरत हों भेद भूल
 बंधुत्व-भाव ही विश्व-मूल
 सब एक राष्ट्र के उपादान !
 (२)

लोकोन्नति का हो खुला द्वार
 पथदर्शक सब का सदाचार
 हों मुक्त कर्म वाणी विचार
 हों श्रेय-प्रेय रे एक-प्राण !
 (३)

हो सहज स्नेह-संस्कृत स्वभाव
 उर में उमंग, उत्साह, चाव
 धन अन्न वस्त्र का मुक्त स्त्राव
 हो विश्व एक जीवन महान !
 (४)

सब श्रम उद्यम गौरव-प्रधान
 सब कर्मों का हो उचित मान
 सब कंठों में हो एक गान
 मानव मानव सब हैं समान !
 गूँजे जयध्वनि से आसमान !

भगवतीचरण वर्मा

(संवत् १९६०—)

आपका जन्म उन्नाव जिले के शफीपुर गांव में हुआ। आप कवि और गद्य लेखक दोनों हैं। आपकी रचनाओं के नाम ये हैं—

कविता—मधुकण, प्रेमसंगीत, मानव

उपन्यास—चित्रलेखा, तीनवर्ष

कहानी संग्रह—इन्स्टालमेंट, दो बांके

आपने 'विचार' नामक एक पत्र का संपादन भी कुछ समय तक किया था। आप एक शक्तिशाली लेखक हैं। आपका गद्य और पद्य एक समान जोरदार होता है। आपकी शैली में ओज मिलता है। आपकी कविताओं में एक निराली मस्ती पायी जाती है।

भैंसागाड़ी

(१)

चरमर - चरमर - चूँ-चरर-मगर,

जा रही चली भैंसागाड़ी !

गति के पागलपन से प्रेरित चलती रहती संसृति महान
सागर पर चलते हैं जहाज, अम्बर पर चलते वायुयान
भूतल के कोने-कोने में रेलों-ट्रामों का जाल बिछा
हैं दौड़ रही मोटरें-बसें लेकर मानव का वृहत ज्ञान !

पर इस प्रदेश में जहाँ नहीं उच्छ्वास, भावनाएँ, चाहें
वे भूखे, अध-खाये, किसान, भर रहे जहाँ सूनी आँहें

नंगे बच्चे चिथड़े पहिने, माताएँ जर्जर डोल रहीं
 हैं जहाँ विवशता नृत्य कर रही, धूल उड़ाती हैं राहें
 बीते युग की परछाँही-सी, बीते युग का इतिहास लिये
 'कल' के उन तन्मिल सपनों में 'अब' का निर्दय उपहास लिये
 गति में किन सदियों की जड़ता ? मन में किम स्थिरता की ममता ?
 अपनी जर्जर-सी छाती में अपना जर्जर विश्वास लिये
 भर-भर कर फिर मिटने का स्वर, कँप-कँप उठने जिसके स्तर-स्तर
 हिलती-डुलती, हँपती-कँपती, कुछ रुक-रुक कर, कुछ सिहर-सिहर
 चरमर - चरमर - चूँ-चरर-मरर जा रही चली भँसागाड़ी !

(२)

उस ओर क्षितिज के कुछ आगे, कुछ पाँच कोस की दूरी पर,
 भू की छाती पर फोड़ों-में है उठे हुए कुछ कच्चे घर
 मैं कहता हूँ खँड़हर उनको, पर वे कहते हैं उन्हें ग्राम
 जिसमें भर देती निज धुंधलापन असफलता की सुबह-शाम

पशु बन कर नर पिस रहे जहाँ नारियाँ जन रही हैं गुलाम
 पैदा होना, फिर मर जाना, बस यह लोगों का एक काम
 था वही कटा दो दिन पहले गेहूँ का छोटा एक खेत !

तुम सुख-सुषमा के लाल, तुम्हारा है विशाल वैभव विवेक
 तुमने देखी है मान-भरी उच्छृंखल सुन्दरियाँ अनेक
 तुम भरे-पुरे, तुम हृष्ट-पुष्ट रे ! तुम समर्थ कर्ना-हर्ता
 तुमने देखा है क्या बोलो हिलता-डुलता कंकाल एक ?

वह था उसका ही खेत, जिसे उसने उन पिछले चार माह
 अपने शोणित को सुखा-मुखा, भर-भर कर अपनी विवश आह
 तैयार किया था, औ' घर में थी रही रुग्ण पत्नी कराह !

उसके वे बच्चे तीन, जिन्हें माँ-बाप का मिला प्यार न था
जो थे जीवन के व्यंग, किन्तु मरने का भी अधिकार न था
थे क्षुधा-ग्रस्त बिलबिला रहें मानों वे मोरी के कीड़े
वे निपट धिनौने. महा पतित, बौने, कुरूप, टेढ़े-मेढ़े !

उसका कुटुम्ब था भरा-पुगा आहों से, हाहाकारों से !
फाकों से, लड़लड़ कर प्रति दिन, घुट-घुट कर अत्याचारों से
नैयार किया था उसने ही अपना छोटा-सा एक खेत !

बीबी-बच्चों से छीन, बीन दाना-दाना, अपने में भर
भूखे तड़पें या मरे, भरो का तो भग्ना है उसको घर !
धन की दानवता से पीड़ित कुछ फटा हुआ. कुछ कर्कश स्वर
चरमर-चरमर-चूँ-चरर-मरर जा रही चली भँसागाड़ी !

(३)

है बीस कोस पर एक नगर, उस एक नगर में एक हाट
जिसमें मानव की दानवता फैलाये है निज राज-पाट
साहूकारों का भेम धरे है जहाँ चोर औ' गिरहकाट
है अभिशापों से घिरा जहाँ पशुता का कलुषित हाट-वाट !

उसमें चाँदी के टुकड़ों के बदले में लुटता है अनाज
उन चाँदी के ही टुकड़ों से यह चलता है सब राज-काज !
वह राज-काज, जो मधा हुआ है उन भूखे कंकालों पर,
इन साम्राज्यों की नीय पड़ी है तिल-तिल मिटनेवालों पर !

वे व्यापारी, वे जमींदार, वे हैं लक्ष्मी के परम भक्त,
वे निपट निरामिष मूदखोर, पीने मनुष्य का उष्ण रक्त !
इस राज-काज के वहीं स्तम्भ, उनकी पृथ्वी, उनका ही धन,
ये ऐश और आराम उन्हीं के, और उन्हीं के स्वर्ग-सदन !

उस बड़े नगर का गग-रग हँस रहा निरन्तर पागल-सा ,
 उस पागलपन से ही पीड़ित कर रहे ग्राम अविकल क्रन्दन !
 चाँदी के टुकड़ों में विलास चाँदी के टुकड़ों में है बल ,
 इन चाँदी के ही टुकड़ों में सब धर्म-कर्म, सब चहल-पहल !
 इन चाँदी के ही टुकड़ों में है मानव के अस्तित्व विफल !
 चाँदी के टुकड़ों को लेने प्रतिदिन पिस कर, भूखों मर कर
 भैंसा-गाड़ी पर लदा हुआ जा रहा चला मानव जर्जर
 है उसे चुकाना मूढ़, कर्ज, है उसे चुकाना अपना कर
 जितना खाली है उसका घर उतना खाली उसका अन्तर
 नीचे जलने वाली पृथ्वी ऊपर जलने वाला अम्बर ,
 औ' कठिन भूख की जलन लिये नर बैठा है बन कर पत्थर !
 पीछे है पशुता का खँड़हर, दानवता का सामने नगर
 मानव का कृश कंकाल लिये चरमर-चरमर-चूँ-चरर-मरर
 जा रही चली भैंसागाड़ी !

सुभद्राकुमारी चौहान

(संवत् १९६१-२००८)

आपका जन्म प्रयाग में हुआ। सं० १९७६ में आपका विवाह खंडवा-निवासी ठाकुर लक्ष्मणसिंह चौहान के साथ हुआ। राष्ट्रीय आंदोलन के सिलसिले में आप कई बार जेल भी गयीं। सं० २००४ में एक मोटर दुर्घटना से आपका आकस्मिक देहान्त हो गया। आपकी रचनाओं के नाम इस प्रकार हैं—

कविता संग्रह—मुकुल, त्रिधारा, सभा के खेल।

कहानी संग्रह—बिखरे मोती, उन्मादिनी, सीधे-सादे चित्र।

आपकी रचनाओं की भाषा सुबोध और शैली ओजस्विनी है। आपकी 'भाँसी की रानी' कविता बहुत ही लोकप्रिय हुई। यह एक साहित्यिक गीत-कथा (ballad) है जिसकी एक-एक पंक्ति से वीर रस छलक पड़ता है। आपकी 'तीन बच्चे' शीर्षक कहानी भी बहुत भाव-पूर्ण हुई है। दोनों ही हिन्दी साहित्य की अमर रचनाएँ हैं।

भाँसी की रानी

(१)

सिंहासन हिल उठे, राजवंशो ने भुक्तृटी तानी थी
बूढ़े भारत में भी आयी फिर से नयी जवानी थी
गुमी हुई आजादी की कीमत सबने पहचानी थी
दूर फिरंगी को करने की सबने मन में ठानी थी

चमक उठी सन् सत्तावन में वह तलवार पुरानी थी
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी ।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो भाँसीवाली रानी थी ॥

(२)

कानपूर के नाना की मुँह-बोली बहिन 'छबीली' थी
लक्ष्मीबाई नाम, पिता की वह मतान अकेली थी
नाना के सँग पढती थी, वह नाना के सँग खेली थी
बरछी, ढाल, कृपाण, कटारी उसकी यही सहेली थी

वीर शिवाजी की गाथाएँ उसको याद जवानी थीं
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी ।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो भाँसीवाली रानी थी ॥

(३)

लक्ष्मी थी या दुर्गा थी वह स्वयं वीरता की अवतार
देख मराठे पुलकित होते उसके तलवारों के वार
नकली युद्ध व्यूह की रचना और खेलना खूब शिकार
सैन्य घेरना, दुर्ग तोड़ना ये थे उसके प्रिय खिलवार

महागाय-कुल-देवी उसकी भी आराध्य भवानी थी
बुन्देल हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी ।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो भाँसीवाली रानी थी ॥

(४)

हुई वीरता की वैभव के साथ सगाई भाँसी में
ब्याह हुआ, रानी बन आयी लक्ष्मीबाई भाँसी में,
राजमहल में बजी बघाई, खुशियाँ छाहीं भाँसी में,
सुभट बुंदेलों की विरुदावलि सी वह आयी भाँसी में,

चित्रा ने अर्जुन को पाया, शिव से मिली भवानी थी ।
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी ।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो भाँसीवाली रानी थी ॥

(५)

उदित हुआ सौभाग्य, मुदित महलों में उजियाली छायी,
किंतु काल-गति चुपके-चुपके काली घटा घेर लायी,
तीर चलानेवाले कर में उसे चूड़ियाँ कब भायीं,
रानी विधवा हुई, हाय ! विधि को भी नहीं दया आयी,

निःसन्तान मरे राजाजी, रानी शोक समानी थी ।
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी ।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो भाँसीवाली रानी थी ॥

(६)

बुभा दीप भाँसी का, तब डलहौजी मन में हरखाया,
राज्य हड़प करने का उसने यह अवसर अच्छा पाया,
फौरन फौजें भेज दुर्ग पर अपना झंडा फहराया,
लावारिस का वारिस बनकर ब्रिटिश-राज्य भाँसी आया,

अश्रुपूर्ण रानी ने देखा, भाँसी हुई बिरानी थी
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी ।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो भाँसीवाली रानी थी ॥

(७)

अनुनय-विनय नहीं सुनता, है विकट शासकों की माया,
व्यापारी बन दया चाहता था यह जब भारत आया,
डलहौजी ने पैर पसारे, अब तो पलट गयी काया,
राजाओं नब्बाबों को भी उसने पैरों ठुकराया,

रानी दासी बनी, बनी यह दासी अब महारानी थी :
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी
खूब लड़ी मर्दानी वह तो भाँसीवाली रानी थी ॥

(८)

छिनी राजधानी देहली की, लखनऊ छीना बातों-बात,
कंद पेशवा था बिठूर में, हुआ नागपुर का भी घात,
उदैपूर, तंजोर, सतारा, कर्नाटक की कौन बिसात,
जब कि सिध, पंजाब, ब्रह्म पर अभी हुआ था वज्र-निपात
बंगाले, मद्रास आदि की भी तो वही कहानी थी
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी ।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो भाँसीवाली रानी थी ॥

(९)

रानी रोयीं रनिवासों में, बेगम गम से थीं बेजार
उनके गहने-कपड़े बिकते थे कलकत्ते के बाजार
सरे-आम नीलाम छापते थे अंगरेजों के अखबार,
'नागपूर के जेवर ले लो' 'लखनऊ के लो नौलख हार'

यों परदे की इज्जत परदेशी के हाथ बिकानी थी ।
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी ।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो भाँसीवाली रानी थी ॥

(१०)

कुटियों में थी विषम वेदना, महलों में आहत अपमान,
वीर सैनिकों के मन में था अपने पुरुषों का अभिमान,
नाना धुंधूपंत पेशवा जुटा रहा था सब सामान,
बहिन छबीली ने रणचंडी का कर दिया प्रकट अह्वान,

हुआ यज्ञ प्रारंभ, उन्हें तो सोयी ज्योति जगानी थी
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी ।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो भाँसीवाली रानी थी ॥

(११)

महलों ने दी आग, भोंपड़ी ने ज्वाला सुलगायी थी,
वह स्वतंत्रता की चिनगारी अंतरतम से आयी थी,
भाँसी चेती, दिल्ली चेती, लखनऊ लपटें छायी थीं,
मेरठ, कानपूर, पटना ने भारी धूम मचायी थी,
जबलपूर, कोल्हापुर में भी कुछ हलचल उकसानी थी ।
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी ।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो भाँसीवाली रानी थी ॥

(१२)

इस स्वतंत्रता-महायज्ञ में कई वीरवर आये काम,
नाना धुंधूपंत, ताँतिया, चतुर अजीमुल्ला सरनाम,
अहमदशाह मौलवी, ठाकुर कुँवरसिंह सैनिक अभिराम,
भारत के इतिहास-गगन में अमर रहेंगे जिनके नाम,
लेकिन आज जुर्म कहलाती उनकी जो कुर्बानी थी ।
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी ।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो भाँसीवाली रानी थी ॥

(१३)

इनकी गाथा छोड़ चलें हम भाँसी के मैदानों में,
जहाँ खड़ी है लक्ष्मीबाई मर्द बनी मर्दानों में,
लेफ्टिनेंट बौकर आ पहुँचा आगे बढ़ा जावनों में,
रानी ने तलवार खींच ली, हुआ द्वंद असमानों में,

जहमी होकर बौकर भागा, उसे अजब हैरानी थी ।
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी ।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो भाँसीवाली रानी थी ॥

(१४)

रानी बड़ी कालपी आयी, कर सौ मील निरन्तर पार,
घोड़ा थक कर गिरा भूमि पर, गया स्वर्ग तत्काल सिंघार
यमुना-तट पर अंग्रेजों ने फिर खायी रानी से हार,
विजयी रानी आगे चल दी, किया ग्वालियर पर अधिकार,
अंग्रेजों के मित्र सेंधिया ने छोड़ी रजधानी थी ।
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी ।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो भाँसीवाली रानी थी ॥

(१५)

विजय मिली, पर अंग्रेजों की फिर सेना घिर आयी थी,
अब के जनरल स्मिथ सन्मुख था, उसने मुँह की खायी थी,
काना और मन्दिरा सखियाँ रानी के सँग आयी थीं,
युद्ध-क्षेत्र में उन दोनों ने भारी मार मचाई थी,
पर पीछे हटू रोज़ आ गया, हाथ घिरी अब रानी थी ।
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी ।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो भाँसीवाली रानी थी ॥

(१६)

तो भी रानी मार-काट कर चलती बनी सैन्य के पार,
किन्तु सामने नाला आया, था यह संकट विषम अपार,
घोड़ा अड़ा, नया घोड़ा था, इतने में आ गये सवार,
रानी एक शत्रु बहुतेरे, होने लगे वार-पर-वार.

घायल होकर गिरी सिंहनी उसे वीर गति पानी थी ।
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी ।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो भाँसीवाली रानी थी ॥

(१७)

रानी गयी सिंघार ! चिता अब उसकी दिव्य सवारी थी,
मिला तेज से तेज, तेज की वह सच्ची अधिकारी थी,
अभी उम्र कुल तेइस की थी, मनुज नहीं अवतारी थी,
हमको जीवित करने आयी बन स्वतंत्रता नारी थी,

दिखा गयी पथ, सिखा गयी हमको जो सीख सिखानी थी
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी ।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो भाँसावाली रानी थी ॥

महादेवी वर्मा

(संवत् १९६४-)

आपका जन्म फर्रुखाबाद में हुआ। आपकी शिक्षा पहले इन्दौर में और फिर प्रयाग में हुई। सं० १९८८ में आपने संस्कृत में एम० ए० किया। इस समय आप प्रयाग के महिला विद्यार्पीठ की अध्यक्ष हैं। आपने कई एक साहित्यकारों के सहयोग से प्रयाग में एक साहित्यकार-संसद की स्थापना की है जिसका उद्देश्य हिन्दी के साहित्यकारों की रचनाओं को प्रकाशित करना और उनकी सहायता करना है। आपकी रचनाओं के नाम ये हैं—

कविता संग्रह—नीहार, रश्मि, नीरजा, सांध्यगीत, यामा, दीपशिखा, आधुनिक कवि भाग १।

संस्मरण—अतीत के चलचित्र, स्मृति की रेखाएँ।

गद्य—शृंखला की कड़ियाँ, कविता-संग्रहों की प्रस्तावनाएँ आदि।

आप हिन्दी की उच्च कोटि की कवि और गद्य-लेखिका हैं। आपकी भाषा संस्कृत-प्रधान होती है। उसमें अनूठा माधुर्य पाया जाता है। आपके काव्य में वेदना की सुन्दर व्यंजना हुई है। आलोचकों ने आपको आधुनिक काल की मीरा कहा है।

संकलित कविता में छायावाद और प्रगतिवाद दोनों का सुन्दर मेल हुआ है।

क्या देखूँ ?

कह दे माँ ! क्या अब देखूँ

(१)

देखूँ खिलती कलियाँ, या
प्यासे सूखे अधरों को ?
तेरी चिर यौवन-सुषमा,
या जर्जर जीवन देखूँ ?

(२)

देखूँ हिम-हीरक हँसते
हिलते नीले कमलों पर ?
या मुरझायी पलकों से
भरते आँसू-कण देखूँ ?

(३)

सौरभ पी-पीकर बहता
देखूँ यह मंद समीरण ?
दुख की घूँटें पीती या
ठंडी साँसों को देखूँ ?

(४)

खेलूँ पराग-मय मधु-मय
तेरी वसन्त-छाया में ?
या झुलसे सन्तापों से
प्राणों का पतझर देखूँ ?

(५)

मकरंद-पगी केसर पर
जीती मधु-परियाँ ढूँँ ?
या उर-पंजर में कण को
तरसे जीवन-शुक देखूँ ?

(६)

कलियों की घन-जाली में
छिपती देखूँ लतिकाएँ ?
या दुर्दिन के हाथों में
लज्जा की करुणा देखूँ ?

(७)

बहलाऊँ नव किसलय के
भूले में अलि-गिशु तेरे ?
पाषाणों में मसले या
फूलों से शैशव देखूँ ?

(८)

तेरे असीम आँगन की
देखूँ जगमग हरियाली ?
या उस निर्जन कोने के
बुझते दीपक को देखूँ ?

(९)

देखूँ विहगों का कलरव
धुलता जल की कलकल में ?

[१३६]

निस्पंद पड़ी वीणा से
या बिखरे मानस देखूं ?

(१०)

मृदु रजत-रश्मियाँ देखूं
उलझी निद्रा-पंखों में ?
या निर्निमेष पलकों में
चिन्ता का अभिनय देखूं ?

(११)

तुझमें अम्लान हँसी है,
इसमें अजस आँसू-जल
तेरा वैभव देखूं, या
जीवन का क्रंदन देखूं ?

हरिवंशराय 'बच्चन'

(संवत् १९६४—)

आपका जन्म इलाहाबाद में हुआ । आप अंग्रेजी के एम. ए. हैं । आपकी कविता पढ़ने की शैली बड़ी आकर्षक और हृदय-ग्राहिणी है । आपकी रचनाओं में से कुछ ये हैं—

मधुशाला, खय्याम की मधुशाला, मधु-बाला, मधु-कलश, निशा-निमंत्रण, एकान्त संगीत, आकुल अन्तर, सतरंगिणी, हलाहल, बंगाल का अकाल, खादी के फूल ।

'बच्चन' हिंदी के उन कवियों में से हैं जिनने हिंदी कविता का दिशा-परिवर्तन किया । छायावाद की कविताएँ जन-साधारण के लिए सुबोध नहीं थीं । 'बच्चन' ने सुबोध शैली को अपनाया और लोकप्रियता प्राप्त की । आरंभ में आपने उमर खय्याम की मधुशाला का अनुवाद किया और मधुशाला के विषय को लेकर कविताएँ लिखीं । पीछे आपने इस विषय को छोड़कर दूसरे-दूसरे विषयों पर रचना की ।

संकलित कविताएँ निशा-निमंत्रण से ली गयी हैं । इनमें संध्या-काल के सीधे-सादे किन्तु भावपूर्ण चित्र हैं ।

निशा-निमंत्रण से

(१)

साथी ! साँझ लगी अब होने

फैलाया था जिन्हें गगन में

विस्तृत वसुधा के कण-कण में

उन किरणों को अस्ताचल पर पहुँच लगा है सूर्य सँजोने

साथी ! साँझ लगी अब होने

खेल रही थी धूलि-कणों में
लोट-लिपट गृह-तरु-चरणों में
वह छाया देखो जाती है प्राची में अपने को खोने
साथी ! साँझ लगी अब होने

मिट्टी से था जिन्हें बनाया
फूलों से था जिन्हें सजाया
खेल घिराँदे छोड़ पथों पर चले गए हैं बच्चे सोने
साथी ! साँझ लगी अब होने

(२)

साथी ! अंत दिवस का आया
नर पर लौट रहे हैं नभचर
लौट रहीं नौकाएँ तट पर
पश्चिम की गोदी में रवि की श्रान्त किरण ने आश्रय पाया
साथी ! अंत दिवस का आया

रवि-रजनी का आलिंगन है
संध्या स्नेह-मिलन का क्षण है
कान्त-प्रतीक्षा में गृहिणी ने, देखो, घर-घर दीप जलाया
साथी ! अंत दिवस का आया

जग के विस्तृत अंधकार में
जीवन के शत-शत विचार में
हमें छोड़कर चली गयी, लो, दिन की मौन संगिनी छाया
साथी ! अंत दिवस का आया

(३)

मध्या सिद्धर लुटाती है

रँगती स्वर्णिम, रज से सुंदर
निज-नीड़-अधीर खगों के पर
तरुओं की डाली-डाली में कंचन के पात लगाती है
मध्या सिद्धर लुटाती है

करती सरिता का जल पीला
जो था पल भर पहले नीला
नावों के पालों को सोने की चादर सा चमकाती है
मध्या सिद्धर लुटाती है
उपहार हमें भी मिलता है
शृंगार हमें भी मिलता है
आँसू की बूंद कपोलों पर शोणित की सी बन जाती है
संध्या सिद्धर लुटाती है

(४)

दिन जल्दी-जल्दी ढलता है !

हो जाय न पथ में रात कहीं,
मंजिल भी तो है दूर नहीं,
यह सोच थका दिन का पंथी भी जल्दी-जल्दी चलता है !

बच्चे प्रत्याशा में होंगे,
नीड़ों से भाँक रहे होंगे,
यह ध्यान परो में चिड़ियों के भरता कितनी चंचलता है !

मुझसे मिलने को कौन विकल ?
 मैं होऊँ किसके हित चंचल ?
 यह प्रश्न शिथिल करता पद को, भरता उर में विह्वलता है !
 दिन जल्दी-जल्दी ढलता है !

(५)

अंधकार बढ़ता जाता है
 मिटता अब तरह-तरह में अंतर
 तम की चादर हर तरहवर पर
 केवल ताड़ अलग हो सब से अपनी सत्ता बतलाता है
 अंधकार बढ़ता जाता है

दिखलायी देता कुछ-कुछ मग
 जिस पर-शंकित हो चलने पग
 दूरी पर जो चीजे, उनमें केबल दीप नजर आता है

डर न लगे सुनसान मड़क पर
 इसीलिए कुछ ऊँचा स्वर कर
 विलग साथियों मे हो कोई पथिक, सुनो, गाता आता है
 अंधकार बढ़ता जाता है

रामधारी सिंह 'दिनकर'

(संवत् १९६५—)

आपका जन्म बिहार के मुंगेर जिले के सिमरिया गांव में हुआ। आप पटना विश्वविद्यालय के बी. ए. (आर्नस) हैं और इस समय बिहार सरकार के प्रचार-विभाग में काम करते हैं। आपकी प्रमुख रचनाएँ ये हैं—

कविता-संग्रह —रेणुका, हुंकार, रसवंती, द्वंद्वगीत, सामधेनी
महाकाव्य—कुरुक्षेत्र।

गद्य—मिट्टी की ओर।

आप प्रेम, राष्ट्रीयता और क्रान्ति के गायक हैं। आपकी 'हिमालय' और 'विषयगा' कविताएँ बहुत प्रसिद्ध हुई हैं। संकलित अंश कुरुक्षेत्र के सप्तम सर्ग से लिया गया है।

कुरुक्षेत्र से

धर्मराज ! यह भूमि किसी की नहीं कीत है दासी
हैं जन्मना समान परस्पर इसके सभी निवासी
हैं सब को अधिकार मृत्ति के पोषक-रस पीने का
विविध अभावों से अ-शंक हो कर जग में जीने का
सब को मुक्त प्रकाश चाहिए, सब को मुक्त समीरण
बाधा-रहित विकास, मुक्त आशंकाओं से जीवन
उदभिज निभ चाहते सभी नर बढ़ना मुक्त गगन में
अपना चरम विकास ढूँढ़ना किसी प्रकार भुवन में

लेकिन विघ्न अनेक अभी इस पथ में पड़े हुए हैं मानवता की राह रोक कर पर्वत अड़े हुए हैं न्यायोचित सुख मुलभ नहीं जब तक मानव-मानव को चैन कहाँ धरती पर तब तक शान्ति कहाँ इस भव को ?

जब तक मनुज-मनुज का यह सुख-भाग नहीं सम होगा शमित न होगा कोलाहल संघर्ष नहीं कम कम होगा था पथ सहज अतीव, सम्मिलित हो समग्र सुख पाना केवल अपने लिए नहीं कोई सुख-भाग चुगना उसे भूल कर फँसा, परस्पर की शका में, भय में निरत हुआ केवल अपने ही हेतु भोग-मंचय में इस वैयक्तिक भोग-वाद से फूटी विष की धारा तड़प रहा जिसमें पड़कर मानव-समाज यह सारा प्रभु के दिए हुए सुख इतने हैं विकीर्ण धरणी पर भोग सकें जो इन्हे, जगत में कहाँ अभी इतने नर ? भू से ले अंबर तक यह जल कभी न घटने वाला यह प्रकाश, यह पवन, कभी भी नहीं मिमटने वाला यह धरती फल-फूल अन्न धन रत्न उगलने वाली यह पलिका मृगव्य जीव की अटवी मघन निराली तुंग-शृंग ये शैल, कि जिनमें हीरक-रत्न भरे हैं ये समुद्र, जिनमें मुक्ता विद्रुम प्रवाल बिखरे हैं और मनुज की नयी-नयी प्रेरक ये जिज्ञासाये उसकी वे सु-वलिष्ट मिथु-मंथन में दक्ष भुजाये अन्वेषिणी बुद्धि वह तम में भी टटोलने वाली नव रहस्य, नव रूप प्रकृति का, नित्य खोलने वाली

इस भुज, इस प्रज्ञा, के सम्मुख कौन ठहर सकता है ?
 कौन विभव वह जो कि पुरुष को दुर्लभ रह सकता है ?

इतना कुछ है भरा विश्व का कोष प्रकृति के भीतर
 निज-इच्छित सुख-भोग सहज ही पा सकते नारी-नर
 सब हो सकते तुष्ट, एक सा सब सुख पा सकते हैं
 चाहें तो पल में धरती को स्वर्ग बना सकते हैं
 छिपा दिये सब तत्त्व आवरण के नीचे ईश्वर ने
 संघर्षों से खोज निकाला उन्हें उद्यमी नर ने
 ब्रह्मा से कुछ लिखा भाग्य में मनुज नहीं लाया है
 अपना सुख उसने अपने भुज बल से ही पाया है
 प्रकृति नहीं डरकर भुक्ती है कभी भाग्य के बल से
 सदा हारती वह मनुष्य के उद्यम से, श्रम-जल से
 ब्रह्मा का अभिलेख पढ़ा करते निरुद्यमी प्राणी
 धोते वीर कु-अंक भाल का बहा भ्रुवों से पानी
 भाग्यवाद आवरण पाप का और शस्त्र पोषण का
 जिससे रखता दबा एक जन भाग दूसरे जन का
 एक मनुज संचित करता है अर्थ पाप के बल से
 और भोगता उसे दूसरा भाग्यवाद के छल से ।

नर-समाज का भाग्य एक है, वह श्रम, वह भुज-बल है
 जिसके सम्मुख झुकी हुई पृथिवी, विनीत नभ-तल है
 जिसने श्रम-जल दिया उसे पीछे मत रह जाने दो
 विजित प्रकृति से सबसे पहले उसको सुख पाने दो
 जो कुछ न्यस्त प्रकृति में है, वह मनुज-मात्र का धन है
 धर्मराज ! उसके कण-कण का अधिकारी जन-जन है

(१४४)

सहज सु-रक्षित रहता यह अधिकार कहीं मानव का
आज रूप कुछ और दूसरा ही होता इस भव का।

श्रम होता सबसे अमूल्य धन, सब जन खूब कमाते
सब अशंक रहते अभाव से, सब इच्छित सुख पाते
राजा-प्रजा नहीं कुछ होता, होते मात्र मनुज ही
भाग्य-लेख होता न मनुज को, होता कर्मठ भुज ही।

श्यामनारायण पांडेय

(संवत् १९६७—)

आपका जन्म आजमगढ़ जिले के डुमराँव गाँव में हुआ। आप काशी के साहित्य शास्त्री हैं। आपकी रचनाओं में हल्दीघाटी और जौहर प्रमुख हैं। दोनों महाकाव्य हैं। हल्दीघाटी में महाराणा प्रताप की और जौहर में पद्मिनी की कथा है। वीररस के लिखने में आपने अच्छी सफलता प्राप्त की है। आपकी भाषा में अच्छा प्रवाह पाया जाता है। प्रकृति-चित्रण भी बहुत सुन्दर हुआ है।

संकलित अंश जौहर महाकाव्य का अठारहवाँ सर्ग है।

जौहर

हवन होता था, चिता की आग धू-धू जल रही थी
धूम की गति में मिली शाकल्य सुरभि निकल रही थी
आँच से जलती दिशाएँ आँच को माला न कम थी
पी रही थी आग-घी, पर भूख की ज्वाला न कम थी
आज तक किसने अनल की भूख की ज्वाला बुझायी
जो चला ज्वाला बुझाने, बुझ गया, पत भी गँवायी
लाल-लाल कराल जीभों को निकाल बढ़ा रही थी
अग्नि की हिलती शिखाएँ प्रलय-पाठ पढ़ा रही थीं
आज चरु के साथ रावल-वंश का संसार स्वाहा !
वीर होता मंत्र पढ़ते—आँसुओं की धार स्वाहा !

आज इस नरमेघ मख में बाल-केलि दुलार स्वाहा !
घघकती जलती चिता में मां-बहन के प्यार स्वाहा !
साथ आहुति के अनल में मेदिनी के भोग स्वाहा !
लो, पिता-माता प्रिया के योग और वियोग स्वाहा !
मंदिरों के दीप स्वाहा ! राज-महल विभूति स्वाहा !
आज कुल की रीति पर, लो, नीति-भूषित भूति स्वाहा !
अमर वैभव से भरे इस ज्वाल में घर-द्वार स्वाहा !
आन-बान सतीत्व पर, लो, आज कुल-परिवार स्वाहा !
इस हुताशन में कुसुम से गात स्वाहा ! रूप स्वाहा !
लो, प्रजा के साथ ही इस वीर-भू का भूप स्वाहा !
पवन से हिल-मिल गले हँसती चिता में हास स्वाहा !
सत्य-रक्षा के लिए जीवन मधुर मधुमास स्वाहा !
इधर होता हवन करते, उधर रूपवती खड़ी थी
चौतरे पर गुनगुनाती आँसुओं की फुलझड़ी थी

आग ! मैं तुझमें समाऊँ

अंक में ही मुक्ति पाऊँ

आज अपनी लाज तेरी गोद में छिप कर बचाऊँ !
पा सकी न शरण कहीं पर मां ! किसी ने दुख न देखा
द्रौपदी के कृष्ण ने भी मलिन मेरा मुख न देखा
साथ सतियों के इसी से शरण में आयी हुई हूँ
मां ! न तू मुंह फेरना, मैं दीन ठुकरायी हुई हूँ
मां ! अगर आदेश दे तो रूप की होली जलाऊँ

आग ! मैं तुझमें समाऊँ

अंक में ही मुक्ति पाऊँ

आज आँचल में छिपा ले, द्वार की इतनी हया कर
पार जीवन के लगा दे, आज तू इतनी दया कर
आज लपटों से लिपट कर मैं कहूँ अपनी कहानी
और इन चिनगारियों में फूँक दूँ ऐसी जवानी
ज्वलित तेरे लोचनों से भी कण आँसू बहाऊँ

आग ! मैं तुझमें समाऊँ

अंक में ही मुक्ति पाऊँ

मैं जलूँ तो राख को तू दे उड़ा क्षिति से गगन पर
पातकी रज छू न पावे, नभ हिले मेरे निधन पर
और विधि से कह, किसी को रूप दे तो शक्ति भी दे
पति मिले तो पति-चरण में भाव भी दे, भक्ति भी दे
माँ ! अगर कह दे नहीं तो देह से ज्वाला जगाऊँ

आग ! मैं तुझमें समाऊँ

अंक में ही मुक्ति पाऊँ

गीत के अंतिम चरण से गरम रव ललकार निकले
जल उठी रानी अचानक अंग से अंगार निकले
पातिव्रत के तेज आगे जग उठीं चिनगारियाँ भी
हा ! जलीं तन के अनल से साथ की सब नारियाँ भी
तब चिता ने भी बुलाया, क्रूर लपटों को हिलाया
और ज्वाला को सभय कंपित रतन ने घी पिलाया
आग हाहाकार करती हरहराती चरु चबाती
रूप-ज्वाला में पचाने को चली भू-नभ कँपाती
बारबार किला हिला, अंबर हिला, भूडोल आया
सिहर कर दबकी दिशाएँ, 'जय सती' ! का बोल आया

देवताओं ने सजल नभ से सती को भाँक देखा
भूलती उनको न उस दिन की सती की रूप-रेखा

इधर स्वाहा शब्द निकला, उधर वह कूदी अनल में
जल उठी लपटें लटों में, बल उठी वह एक पल में
गात छन-छन, रूप छन-छन, एक छन तक छन छनाकर
उड़ गयी मिल कर धुएँ में ज्योति जग में जगमगा कर

जल गयी रानी रुई-सी, स्मृति सुई-सी गड़ रही है
पथिक ! गंगा आँसुओं की विवश आज उमड़ रही है
लाज अबला की बचा ली, आग ! क्या तुझको बखानूँ
छीन ले कोई अगर तुझ से उसे तो वीर जानूँ

हा ! सती के बाद ज्वाला में धधकती नारियाँ थीं
खेलती चिनगारियों से सुमन-सी सुकुमारियाँ थी
आग में कूदीं अभागिन प्रथम विधवाएँ बिचारी
प्राण-पति के सामने कूदीं चिता में प्राण-प्यारी

देखती अपलक तनय को मां बली बलती चिता में
हा ! पिता के सामने कूदी सुता जलती चिता में
भाइयों को देखती कूदीं अनल में धीर बहनें
अग्नि-पथ से स्वर्ग पहुँचीं वीर गढ़ की वीर बहनें

दुधमुँही नव-बालिकाएँ जो न कूद सकीं अनल में
आग में फेंकी गयीं वे मातृ-कर से एक पल में
देख भैरव दृश्य जड़ चेतन सभी लय भाँपते थे
चीखती थी यामनी तारे गगन पर काँपते थे

प्रलय के भय से दिशाएं त्राहि-त्राहि पुकारती थीं
इधर ललनाएँ चिता में मौत को ललकारती थीं
इस कठिन व्रत-साधना में लग सकी क्षण की न देरी
रूप यौवन की जगह पर राख की थी एक ढेरी ।

देवियों के भस्म पर नव सुमन बरसाये सुरों ने
रख लिया वह दृश्य अपने में सजग जग के उरों ने
राख को सिर से लगा कर पाप-ताप शमन करो तुम
देवियाँ इसमें छिपी हैं, बारबार नमन करो तुम !

टिप्पणी

कबीर

(१) साखी

१. समा—समान। न को—कोई नहीं। सगा—आत्मीय। सोधी—सुध, बोध। समी—समान। दाति—दान। २. साईं—स्वामी, ईश्वर। कस्तूरी का मृग इ०—कस्तूरिये मृग के नाभि में ही कस्तूरी होती है परन्तु वह इस बात को नहीं जानता, जब कस्तूरी की सुगन्धि आती है तो वह यह जानने के लिए कि सुगन्धि कहां से आती है चारों ओर घास, पौधों आदि को सूंघता हुआ फिरता है। इसी प्रकार ईश्वर मनुष्य के भीतर ही बसता है परन्तु अज्ञान के कारण वह उसे तीर्थ आदि बाहरी स्थानों में खोजता है। ३. कुंडल—नाभि-मंडल। ४. बाहिरा—बिना। जाय—बिकता है। ५. लहर इ०—समुद्र की लहर आई जिसके साथ मोती आकर तट पर बिखर गये। मंझ—रहस्य, भेद। जाणई—जानता है। चुणे चुणि—चुन चुनकर। बगुला—अज्ञानी। हंस—ज्ञानी। ७. संतई—संतपना। भुवंगां इ०—सांपों से घिरे हुए। ९. सालगराम—शालिग्राम, ईश्वर। परतख—प्रत्यक्ष। पाथर—मूर्ति (का देवता)। ११. वुस्त—वस्तु। मीठा—स्वादिल भोजन। मान को—प्रतिष्ठा के लिए। चाइ—चाह, इच्छा। १२. मनह—मन से। उतारी—भुला दी। माया—संपत्ति। १३. मुयिनर—मुनिवर। १४. दार—दाल। १५. अघाइ—पेट भरकर, खूब। १६. गरबियो—गर्व में भर गया है।

अवास—महल । परचों—परसों । भुइं—पृथ्वी में । जामें—उगेगी । १८. जैसा इ०—ऊपर से सुन्दर और आकर्षक पर भीतर निस्सार । भूठे—इसका सुन्दर रंग भूठा है, उसमें मुग्ध मत हो । १९. चक्की—काल का चक्र । दो पाट—पृथ्वी और आकाश के बीच में, इस संसार में । २०. मनिखा इ०—मनुष्य का जन्म । २१. वणराइ—वन के राजा । २२. थली—सूखी भूमि, जंगल में चरते हुए मृग को एक बहेलिये ने बाण से बोंध डाला । पंथ सिर—(परलोक) मार्ग पर चल दिये । २३. आहेड़ी इ०—शिकारी ने वन में अग्नि लगा दी । २४. ताल—मैदान में । कितोक—कितने-एक बाणों के वारों को बचाऊं । २६. खसम—मालिक । करई—करता है । २७. कह—अपनी भुजाओं के बल की आशा करो, परायी आशा छोड़ दो ।

(२) सबद

१. हरिजन—भक्त हंसों के समान फिरते हैं । निरमल इ०—भगवान् के निर्मल नाम को जपते हैं और उनके यश को गाते हैं । आन-उदासी—दूसरों से विरक्त रहते हैं । मुगताहल—मुक्ताफल, मोती । चंच इ०—चोंच लगाते हैं । मौन इ०—या तो चुप रहते हैं या हरि के गूण गाते हैं । कड़वा—कउवा होना चाहिए, कौवा । निज—निज ईश्वर का । तेरा—ईश्वर का । निबेरा—निश्चय । २. बागड़ देस—मरुभूमि, यह संसार । जिनि—मत । धीरा—पंडित, ज्ञानी, जानकार । कहत अबीरा—अज्ञान के कारण धूल को अबीर कहते हैं । हंसा—हंस, जीव । मालवा—मालवा प्रान्त, ईश्वरीय लोक । गूंगे का गुड़—गूंगा मीठा खाता है तो उसे जो प्रसन्नता होती है उसे दूसरे को नहीं बता सकता ; ईश्वर के मिलने से जो आनन्द होता है उसे भक्त ही जानता है । ३. भावें इ०—चाहे जान, चाहे न जान । छीलर—छिछली तलैया । सचु—मुख । डहके इ०—इस माया ने सब जीवों को धोखे में डाल रखा है । जुगिजुगि

इ०—युग-युग में राम ही आधार हैं, उनकी कृपा से ही उबरा जा सकता है। ४. जासी—जावेगा । आत्म-ग्यान—आत्म-ज्ञान । क्या मथुरा इ० चाहे मथुरा जाओ चाहे काशी, किसी भी तीर्थ से कोई लाभ नहीं । अविनासी—ईश्वर । ५. विडरत—भगाने से नहीं भागते । वदत—गिनते हैं । काहू—किसी को । मृग—इंद्रिया । खेत—शरीर । किरखी—खेती । विभुका—विजूका, खेत का धोखा, चिड़ियों को डराने के लिए लकड़ी के खंभे पर रखी उलटी काली हांडी । अक्खर दोइ—राम का नाम । बरियां इ०—बाड़ी को भली भांति संभालूंगा । ६. कह्यां—कहने से । तिरि जाइ—राम का नाम जपकर पार हो जाय । हरि बोलै—राम-नाम बोलता है । सुरत आनै—याद करता है । बिना प्रेम के केवल राम-राम रटने से कोई लाभ नहीं । ७. बौराना—बावला हो गया । पतियाना—विश्वास करता है । डिभ—दंभ । सबद—पद । मूए—मर गये । ई—यह । भरम—भ्रांति, अज्ञान ।

सूरदास

१. आजु इ०—कृष्ण की उक्ति । अपने कर—अपने हाथों से तोड़ कर । ऐसी इ०—यशोदा की उक्ति । भांति—दशा, अवस्था । आवत—लौटते-लौटते रात हो जायगी । जात—ग्वाले जाते हैं । रेंगत—भटकते हुए । २. रैता इ०—ग्वालों के नाम । ओदन इ०—दही-चावल का भोजन । सौंह—सौगंद दिला दे जो यमुना में नहाऊं (यशोदा डरती थी कि कहीं कृष्ण यमुना में नहाने न चला जाय और डूब जाय) । ३. हेरी—गायों को पुकारने की टेर । जान्यौ—ग्वालों के साथ दौड़ते हुए देखा । बलदाऊ—बलराम का नाम लेकर पुकार रहे थे । बल—बलराम । सवारे—जल्दी । ५. कनियां—गोदी में । मेरो—मेरा कहैया । निछनियां—एकदम, बिलकुल । आन्यौ है—लाये हो । नन्हइया—छुटैया (बालक

का प्यार का संबोधन) । ६. न सोवौं इ०—सोने पर प्रातःकाल जल्दी न उठ सकूँ और ग्वाल गायें लेकर चले जायं । ७. अवारे—देरी । घोस—ग्वालों का गांव । चारे—चराने को । हहा करत—जाने देने के लिए हाहा खाते हैं, गिड़गिड़ाते हैं । ८. धातु-चित्र इ०—शरीर पर गेरू आदि के चित्र बनावें । सालक—सालनेवाले, कांटे की तरह खटकनेवाले । ९. विलम इ०—देर मत लगाओं । सुरभी—गायें । आहीं—होंगी । गइयन—गायों के विषय में । १०. जँवत—हमारे भोजन करते समय तुमने हमको पुकारकर साथ नहीं लिया । चंडाई—शीघ्रता । छाक—वन का भोजन । १२. विखान—सोंग (का बाजा) । बैन—वेणु, वंशी । उघटि—तान को मोड़कर । सैन—सेना । त्रिविध—शीतल, मंद, सुगंध । घन—गहरे । ऐन—खूब । १३. खरिक—चौपाइयों का बाड़ा । नैसुक—जरा सी । घइया—ताजा दूध । १६. डसाइ—बिछा दीं । मरुत इ०—हवा धीमी चाल से चलने लगी । सैन—शयन, यमुना का जल बिल्कुल शान्त होकर बह रहा था । आयसु—आदेश, घर जाने की आज्ञा दी ।

तुलसीदास

(१) राम-वनबास

सहमि—भयभीत होकर । स-रुष—ऋष । घरी इ०—जीवन की बाकी बची घड़ियों को गिन रही हो । काऊ—कभी । लच्छ—लक्ष्य । बाग—वाणी । तोषनिहारा—सन्तोष देनेवाला । विसेखि—विशेष रूप से । तेउ—ऐसे मूर्ख भी । कुमति—दुर्बुद्धिवाली कँकेयी । रहसी—प्रसन्न हुई । कपट-सनेहु—भूठा प्रेम । चौथेपन—वृद्धावस्था में । मगध—मगध जो अपवित्र देश माना गया है । अकनि—मुनकर (आकर्ण्य) । फनिक—सांप । अवढरदानी—बिना सोचे-समझे मुंहमांगा दे डालनेवाले । बरु—भले ही, चाहे । गोसाईंहि—स्वामी को, आपको । चारिपदारथ

—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष । बीछी—बिच्छू का विष । दवारी—दवाग्नि । करुन इ०—शोक को सेना । बजाइ—डंका बजाकर । मिलेहि इ०—जब सब शुभ संयोग मिल गये थे । छाइ—मकान को छाकर उस पर । चीखा—चखा, चखना । पालव—पल्लव । ठाटा—साज सजा दिया । बरुह—भले ही । भयेउ इ०—सब दुःखों के पात्र हुए । अबला—स्त्री । गा—नष्ट हो गया । परिमिति—मर्यादा । उदास—उदासीन । रद—दांतों से । अलीहा—मिथ्या । जाहिं—नष्ट होते हैं । चवइ—टपकावे । गिरावे । तूल—तुल्य ।

(२) दोहे

राकापति—पूर्णचन्द्र । दव—अग्नि । ये—लोग । बांधि—पुल बांधकर । सुजान—अच्छी तरह जाननेवाला और पालनेवाला । बसात—दुर्गन्ध आती है । कंचन इ०—चाहे सोने का मेह बरसता हो । जग तें—संसार से । छत्तीस—३६, दूसरी ओर मुंह किये, विमुख । छत्तीन—६३, सामने मुंह किये, अनुकूल, सम्मुख । मतो—विचार । दाहिने—अनुकूल । नव को अंक—नव के पहाड़े में जितनी संख्याएं आती हैं (१८, २७, ३६, ४५, ५४ आदि) सब का जोड़ नौ ही होता है । परमारथ—मोक्ष ।

नरोत्तमदास

१. लोचन कमल—कमलों के समान नेत्र हैं । बैजयन्ती—विष्णु की माला का नाम । २. सिच्छक—ब्राह्मण जगत् का शिक्षक या गुरु कहा गया है । कै—करके । ३. सिद्धि करो—प्रस्थान करो । तिहूं पन—तीनों अवस्थाएँ, बालपन, युवावस्था और बुढ़ापा । ४. पन—प्रतिज्ञा, कार्य । जुद्ध—युद्ध करना । जुवा—युवा । बैस—वैश्य । कै—या तो । ५. हठती—हठपूर्वक सहन कर लेती । हठौती—जाने के लिए तुमसे हठ न करती । ६. तक—बात । ठठानी—ठीक समझ लिया है ।

लड़ा—गाड़ी । छानी—छप्पर । अधानी (अयानी होना चाहिए)—
हे अजान स्त्री । ७. जग्य—यज्ञ नहीं कर सकने के कारण । पित्रई—पितर
भी । अगत्रई—आगेसे ही, पहले से ही । ९. लत—लेत होना चाहिए ।
१०. जक—भक, धुन । एक बात को बार-बार कहना । चारिन (चारि
होना चाहिए) । १२. खूंट—कोने में । बाली—बालें । बूट—हरा
चना । १४. लटी—जीर्ण । उपानह—जूती । १५. खखेटचो—खटका
उत्पन्न हुआ । सरसे—लगाने पर । परसे—जब पैर छुए । ससेटचो—
सिमटा जाता है, संकुचित होता है । भेंटचो—गले लगाया । १८. चांपि—
दबाकर । बाद (बानि होना चाहिए)—आदत । अछोट—बड़ी-बड़ी
मुद्दियां । २१. कमला—रुक्मिणी । दुइलोक बिहारो—दो लोकों का
स्वामी । २२. पायस—खीर । सिता—खांड । पहीति—दाल ।
सुरभि—गायका । प्रफुल्ल—खिला हुआ पुष्प या कमल । अच्छ कै—
अच्छी तरह । पछ्यावरी—भोजन के अन्त में परोसा जाने वाला पेय
पदार्थ, यहां सिखरन । २७. पुलकिन—पुलकित होने का ढंग । पठवनि—
बिदाई । ओड़त—फैलाते । ३१. भक्त—भींकते हुए । ३२. तोर—
—निकट । ३३. वेई सुरवर (सरवर होना चाहिए) इ०—सरोवरों में
वे ही हंस बोल-मिल रहे हैं । दहलीजन में—चौपालों में । मरोर—शान से ।
गिलन को—खाने के लिए । ३४. तोरह—तोड़ डालेगा । ३५. टोटनी—
टोंटी । कंधारी—गुदड़ी । सो टूक वहाँ—वह भी सौ जगह टूटा हुआ ।
पावौ—चारपाई के पाये । बाटकी—कटोरी । ३६. चामीकर-धाम—
सोने के महत्व । लूम—पूँछ । बनवारी—वन में फिरकर चलनेवाली ।
३८. छूछी—खाली, आभूषणहीन । छाम—दुर्बल । पटंबर—रेशम ।
बिहारी (तिहारी होना चाहिए) । पामरी—रेशमी ओढ़नी ।

रहीम

२-१५. साहब—(१) स्वामी, (२) ईश्वर, (अन्योक्ति) । मुनि-

पतनी—अहल्या । दांत काढ़ देना (मुहावरा)—दीनता दिखाना । अनखाये—
 —बिन खाये । अनखाइ—अप्रसन्न हो । भरे इ०—भेट भर जाने पर
 मनुष्य की दृष्टि बिगड़ जाती है, वह अनुचित स्थानों पर दृष्टि डालने लगता
 है । रहिला—चना । बां—तब तक । समूच—अखंडित । पानी—(१)
 प्रतिष्ठा, (२) कान्ति (३) जल । सरग-पतार—जमीन-आसमान की
 बातें, भूठी-सच्ची उलटी-सीधी बातें । कपार—सिर । तार—ताड़ ।
 हेत—प्रेम । धर—धड़ । खेत—रणक्षेत्र में । काके काके—किस-किस के
 आगे । अंसुवा—आंसू । १६-३०. ढेंकुली—पानी निकालने का यन्त्र-
 विशेष । बारे—(१) जलाने पर (२) बचपन में । बड़े—(१) बुझने
 पर, (२) बड़ा होने पर । छोह—प्रेम । अनत—अन्यत्र । भाइ—
 प्रेम । रुधिरें—मृग का अपना रुधिर (भागते समय गिरता हुआ रक्त)
 ही उसके छिपे स्थान को बता देता है । पामरी—रेशमी वस्त्र । काज—
 मतलब । बुताइयें—बुझ जाती हैं । गोइ—छिपाकर । अठिलैंहें—
 हंसेंगे । स्वाति—स्वाति नक्षत्र का (सूर्य जब स्वाति नक्षत्र में हो तब बरसा
 हुआ) जल । कमला—लक्ष्मी । पुरुष-पुरातन—(१) बूढ़ा मनुष्य
 (२) विष्णु । फरजी—शतरंज का वजीर । तासीर—प्रभाव से ।
 सरे—बन जाने पर । नदी इ०—ढूल्हे के मौर को नदी में बहा देते हैं ।
 ३१-३७. गाढ़े—विपत्ति में । बरहि—बड़ को । बरेह—बड़ की जटाएं
 जो पृथ्वी में जमकर पेड़ बन जाती हैं । सरवरि को—समानता करनेवाली ।
 दिवान—मंत्री । प्रभु—राजा । देखि—जिसे देखकर नेत्र आदर देते हैं,
 मन उसी के हाथ बिक जाता है । अच्युत विष्णु के चरणों से उत्पन्न
 नदी । सिव इ०—शिव के सिर पर मालती के पुष्पों की माला के समान
 शोभायमान । बनायौ—बनाना । हरि इ०—मुझे विष्णु मत बनाना जिससे
 तुम मेरे चरणों में रहो, मुझे शिव बनाना जिससे मैं तुम्हें सिर पर
 रख सकूँ ।

केशवदास

१-४. आसन-गत—आसन पर बैठा । करहाट—सुवर्ण । वेस—रूप । जीव—बृहस्पति । जच्छ—कुबेर यक्षों के अधिपति कहे गये हैं । अनैसे—अनिष्ट, दुष्ट, राक्षस ।

४-१०. दही—जला दी । अच्छ—रावण का छोटा पुत्र । वृथा—भूठ । राज-प्रेषक—राजदूत । लाइ—आग लगाकर । बहुधा—बहुत, खूब अच्छी तरह । सात सागर—दुग्ध, दधि, घृत, मधु, इक्षु-रस, सुरा और क्षार जल के समुद्र । रघुनाथ इ०—राम के बाण से मारा जाकर । क्यों—कैसे । देव-दूषण इ०—देवताओं के शत्रु रावण को संतापकारी । कौन बात—किस काम से । हयो—मारा । काहू—किसी ने । भारि—भाड़कर । चिकारि—खेल ही में । त्रिकूट—एक पर्वत जिस पर लंका बसी थी । सोक इ०—अशोक-वाटिका को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया । राखिये—बचा लो । ईस—राम । ओक को—अपने घर को । लोक इ०—ब्रह्माने दिग्पालों के सहित जिन-जिन लोगों की रचना की । सीव—सीमा में । ११-१९. छिति-छत्र—पृथ्वी के क्षत्रिय-मंडल को । हैहयराज—सह-स्रार्जुन । बनरा—छोटा सा बन्दर । तूल—रुई । जरी न जरी—जली नहीं जली, पूरी जली भी नहीं । जराइ जरी—रत्नों के जड़ाव से जड़ी हुई । चपि—दबकर । वादिहि—जाकर व्यर्थ अपनी बड़ाई की । ताल—सात ताल के पेड़ जिनको राम ने एक ही बाण से बेध दिया था । चेटक—जादूगरी, इन्द्रजाल । को—कौन । बपुरा—बेचारा । सुर इ०—इन्द्र को भी मैंने बांध लिया । बान—बाणासुर । बावन—वामन । चिर चेरिन—बूढ़ी दासियों में । सुखेण—सुषेण । हनू—हनूमान । पद—राज्य । जाय कै—जन्म देकर । अपूतन—पुत्रहीनों की गति को पहुँचा । बपु-मारै—अपने पिता के मारनेवाले को । ता सों—उसको । बिलगु—बुरा । उरसि—हृदय में । जनक—पिता । नूत—नवीन । दूत-विधि—

दूतत्व करने का ढंग । २०-३४. सिवा—गीदड़ । निरै-बिहारी—नरक में जाने वाले । सूर—सूर्य । छपानाथ—चन्द्रमा । [सका—पानी भरने-वाला । सिखी—अग्नि । पाककारी—रसोई करनेवाला । महादंड धारी—भैरव । पेट चढ़यो—पेट में आया । पलका—पलंग । सो—वह परमात्मा का नाम । चढ़ि चित्त रह्यो—चित्त में अभिमान से भरा है । बानराली—बन्दरों की सेना । ठांव-कुठांव—अच्छा-बुरा स्थान । निकाम—बिना काम के । अंतक—यम । इन्द्रजाल—बाजीगरी । रिखि-नारि—अहल्या । द्विज नाते—तुम ब्राह्मण हो इसलिए । अमानुषी इ०—पृथ्वी को मनुष्यों और बन्दरों से रहित कर दूंगा । तिन—उन परशुराम के बल का, जिनने पृथ्वी को क्षण भर में क्षत्रिय रहित कर दिया था । पुरैनि—कमलिनी । धरको—शंका । गुन—सामर्थ्य । अच्छ-रिपु—हनुमान । लाइ दियो—जला दिया । प्रस्थान—प्रस्थाना; जब मुहूर्त के दिन जाना नहीं हो सकता तब सुपारी आदि कुछ चीजें एक कपड़े में बांधकर किसी मन्दिर में रख आते हैं और फिर सुविधानुसार प्रस्थान करते हैं, इस प्रकार प्रस्थान पहले भेजा जाता है ।

बिहारी

१-१०. बहार—वसंत । अपत—पत्रहीन । इन डारनि—इन इन सूखी डालों में । वे फूल—वैसे सुन्दर फूल । तजि—पत्तों को गिरा दे । गांवई—छोटे गांव में । अतर—इत्र । कनक—सोने में । कनक तें—धतूरे की अपेक्षा । बिरद-बड़ाई—नाम का बड़प्पन, बड़ा नाम । नल—फव्वारा । प्रकृतिहि—स्वभाव में । बीच—अंतर । दई दयी—विधि ने जो दिया उसे स्वीकार कर । ११-२०. औथरो—उथला, छिछला । वाइ—वापी, बावड़ी । एकाएक इ०—कोई एक भी । व्यौसाइ—व्यवसायी, प्रयत्न करनेवाला । निदाघ—ग्रीष्म ऋतु में । सकात—शंकित

होता है । दुराज—दो राजाओं का राज्य । मावस—अमावस को सूर्य और चन्द्रमा दोनों एक राशि पर इकट्ठे हो जाते हैं । बिखम—भयंकर । बृखादित—वृष राशि का सूर्य, ग्रीष्म ऋतु । मतीरनि—तरबूजों को । मारौ मूंड—सिर पर मारो । जुरै—उत्पन्न हो, बने । को घटि—कौन घटकर है । ये—राधा । बृख भानुजा—(१) वृषभानु की बेटी (२) बैल की बहन । दे—कृष्ण । हठधर—(१) बलराम, (२) बैल । वीर—भाई ।

देव

१. कूकनि सों—बोलों से, बोलों को सुनकर । अनुराग—प्रेम । रागत—अनुरक्त होते हैं । राग-संगीत । उनयी—उमड़ी । दूकनि—दो-एक । दल—पत्ता (वनस्पतियों में दो-दो पत्ते निकल आये हैं) । रंग-राती—(आनंद के) रंग में रंगी हुई । हहराती—लहराती हुई । भूकनि सों—भोंको से ।

२. जहां—उस भूमि में जहां । लाहनि—नृत्य करती हुई या आनंद में भरकर । छहरें—बिखरती हैं, उड़ती हैं । पीली—पीले पराग के समूह । रस केलिनि में—रसमयी क्रीडाओं में । लुंजें—पंगु हो जाती है । चित्त की इ०—चित्त स्थिर हो जाता है, मुग्ध हो जाता है । अनुकूल—सुहावना । ते—वे । बंजुल—बांस । ३. पांडर—एक वृक्ष । डर मार्च—डर लगता है । भौरनि—समूहों में या कुंजों में । माधुरी—मधुरता की समूह आभों की मंजरियों पर भौरें बोलते हैं मानों जादू के मन्त्र पढ़ते हैं जिनको सुनकर मन मोहित हो जाता है । लागि—विरह की अग्नि प्रज्वलित होकर उसकी ज्वालाएं उड़ने लगती हैं । कचनार—एक पेड़ । सांचें—सत्य ही । नाचें—वसंत की पंचमी पर नाचना ही पड़ेगा (वसंत आने पर मोर नाचने लगते हैं) । ४. केसरि—केशर, टेसू, कुसुम, कुरो, अमलतास और कनेर के वृक्षों में । कोकिल इ०—कोयल के गान में,

नवीन पराग में, और बागों में सर्वत्र फाग मची हुई है । ५. सोखे इ०—जिनने हाथियों के समान समुद्र को सोख लिया है विंध्य—जो मानो विंध्याचल और गंधमादन पर्वतों के भाई हैं, (उनके समान दिखाई पड़ते हैं) । बंधुर—सुन्दर । गरज इ०—भारी गर्जना वाले । भ्रमकारे—भ्रम-भ्रम करते हुए, बरसते हुए । पुकारे—पपीहे और मोर जब पुकारते हैं तो ये उनके मुखों को चूम लेते हैं, उन पर बरसते हैं । डगर—मार्ग । मिलि गये—इतना जल बरसा रहे हैं कि सब मिलकर एकाकार हो गये हैं । पुर-वानि—छोटे गांव । भारे इ०—भारी जल की धाराओं के कारण अंधेरे बने हुए पर्वतों पर बादल दौड़ रहे हैं । धुमारे—धुएं के रंगवाले । धुरवानि के—ध्रुव की दिशा के, उत्तर से उठे हुए । ६. यशोदा का कृष्ण के प्रति कथन । बारे इ०—छोटे और बड़े सभी जाने को तैयार हो गये । अथाइन की—राजदरबारों की । बिहारी—निहारी होना चाहिए (सदा गायों के साथ रहकर वन की भूमि को देखता फिरता है) । याहि—इस कृष्ण को । ७. जादव वृद्ध इ०—यादवों में बड़े (आदरणीय) अर्थात् अक्रूर को यदि कंस ने भेजा है । लेन—ब्रज के लोगों को ले जाने के लिए । ततौ—तो । हैयै—है ही, साथ जा ही रहा है । तौ०—मेरा जीवन तभी तक है । किन—क्यों नहीं । कन्हैयै—कृष्ण को । ८. गोपियां कहती हैं—हमारा हृदय कांप रहा है । उत्तर में कृष्ण कहते हैं—हमारा हृदय तो नहीं कांपता । गोपियां कहती हैं—यह अनोखी हंसी करने की इच्छा तुम्हें क्यों हो रही है (यह अनोखी हंसी क्यों कर रहे हो ?) शीत से मर रही हैं, जरा सांस ले लेने दो । हे हमारे वस्त्रों को हर लेने वाले कृष्ण ! आकाश उजियाला होने लगा है (सबेरा हो रहा है) कहीं ऐसा न हो कि कोई हमें इस अवस्था में देख ले और हमारी हंसी करे । कृष्ण कहते हैं—हंसी करे तो करने दो । गोपियां कहती हैं—देखो, आंखों में देखनेवाली ज्योति आ गई है (इतना प्रकाश हो गया है कि आंखें देखने लगी हैं, आंखों को दिखाई देने लगा है),

हमारे नेत्रों में लज्जा जाग उठी है । कृष्ण कहते हैं—नेत्रों में लज्जा को जाग जाने दो । गोपियां कहती हैं—हमारे वस्त्र दे दो, हे हमारे कृष्ण, देखो तो, अब भी वस्त्र दे दो और हमें ब्रज में बसने दो । ९. गोपियों ने राधा का राज के हलकारे का रूप बनाया और उन्हे लेकर मधुबन के कुंजों में ले आई और कृष्ण को पुकार कर कहा—मथुरा से यह हलकारा आया है, चलो तुमको कंस ने यह कहकर बुलाया है कि मैंने सुना है कि तुम वही बेचने का कर लेते हो । भला, तुमने किसकी आज्ञा से यह लूट मचा रखी है । यह सुनते ही कृष्ण के साथ के ग्वाले डरकर न जाने किस मार्ग पर—(कहां) भाग गये और कृष्ण भी घबराये । राधा ने उनको हाथों में पकड़ लिया । किन्तु आंखें चार होते ही राजा का वह छल छूट गया । मुसकाते हुए उसकी भोंहें ढीली हो गयीं (बनावटी क्रोध दूर हो गया) । १०. बूझें—जानती हैं । माय को—माता को । मायको—नैहर । अरुक्त—उलझते ही । पुरिखा—बड़े-बूढ़े । बूक्त—लड़ाई ठन जाती । बूक्त—समझते हो । ११. ख्याल—खेल । हाँस डो—लालसा में खिंचे हुए । मीच पै—मृत्यु से । तहां ही—वहीं ।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

१ समीरण

समीरण—पवन । विकीरण—विकीर्ण, फैलाना । दाता बन्यो—दानी बना हुआ । प्राण = तत्त्व—प्राणतत्त्व, जीवन-तत्त्व जो चेतनता देता है । आत—आने पर । पहरू—पहरेदार । छिपी—छिपि होना चाहिए । छोर—खोल । तौन काल—उस समय । प्रलै पीछे सृष्टि सम—चेतनता से परिपूर्ण, चहपहलमय ।

२ प्रबोधिनी

तेहि—उस (अग्नि) को । सूरता बिलायी—वीरता विलीन हो गयी । जीवन—जीवित होना चाहिए । अकल-हत—हतबुद्धि । कल—युक्ति, उपाय (या, कलें = मशीनें, यन्त्र) ।

श्रीधर पाठक

सरिवर—सरवर होना चाहिए । घोर—गर्जन । जीवन—जीवन का अर्थ जल भी होता है । तुंब—तुव होना चाहिए, तुम्हारा । रूखे—अप्रसन्न । रूख—जीवनहीन । भर—भड़ा । रन-व्रत—युद्ध का व्रत धारण किये हुए । लरजन—लहराना, उमड़ना । धुरवान—बादलों (की घटा) को । बरावहु—करावहु होना चाहिए । भरहु—जल भर दो । कजरी—वर्षा का गीत विशेष । मलार—वर्षा का राग, वर्षा के गीत । संवत्सर इ०—वर्ष को सरस बनाओ, सुकाल करो । सस्य—शस्य, अनाज ।

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिश्चौध'

म्लानता भी—यहां भी अनावश्यक है । नवनी—नवनीत, माखन । स्निग्ध—कोमल । रव—शब्द । मुग्धता—मोहिनी । उन्मना—उदास । वार—दिन । शिशु—(गोप) बालक । भूजात—वृक्ष । विकच—खिला हुआ । भूली, भूले, भूला—भूलना क्रिया, कर्त्ता और कर्म दोनों के साथ आती है, यहां कर्म के साथ आयी है—कृष्ण को लता कैसी भूली = कृष्ण लता को कैसे भूल गये; भूजात भूले—कृष्ण वृक्षों को भूल गये; हृदय-बन को भूलीं—हृदयघन कृष्ण धेनुओं को कैसे भूल गये । सद्य—सद्ग होना चाहिए, घर । सदन—घर । न्यारी—निराली, सुन्दर ।

कर्मवीर

उत्ताल—ऊंची । कार्यरत—काम करने में लगा हुआ, काम कर डालने की ठान लेनेवाला । कुंभज—अगस्त्य । पयोनिधि—समुद्र । बाधक—बाधा देनेवाली बात । पवि—वज्र । सांस इ०—मर जाती है । उकठे—सूखे । बालकर—जलाकर । दामिनी—बिजली ।

रामचन्द्र शुक्ल

१. दोउ—बुद्ध और उनके सारथी । लसे—शोभायमान हुए ।

छोर—किनारे के भाग । परें—और आगे । श्रम-लीन—मेहनत करते हुए ।
 रोर—शब्द । २. लिये—लिये होना चाहिए । पथ-पार—मार्ग के
 उस पार । पयार—घास के ऊंचे ढेर । मौर—मंजरी । सहकार—आम
 के पेड़ । अंगन—अंगों में शरीर में । बगरावत—फँलाता है । बात—
 पवन । ३. नवाय—भुकाये हुए है । गोठ—किनारी । भहराय—भरभर
 शब्द करते हुए, हिलते हुए । ४. सरीसृप—रेंगनेवाले जीव । चाख—
 नीलकंठ । ५. ककि—कूक होना चाहिए । नाय—डालकर, बिखराकर ।
 छिति—क्षिति, पृथ्वी । गिलाय—गिलहरी । ६. बाजन बाजन—बाजे
 बजने की ।

मैथिलीशरणा गुप्त

१ कंकेयी का कोप

१-१०. धर्मादर्श-निकेत—धर्म के आदर्शों का घर । हर्षोद्रेक—
 आनन्द की बाढ़ । २. दशों दिग्पाल—इन्द्र, अग्नि, यम, नैऋत, वरुण,
 वायु, कुबेर, ईशान, ब्रह्मा, और विष्णु । गुण-केन्द्र—गुणों के स्थान, गुणों से
 युक्त । त्रिवेणी—गंगा, यमुना, सरस्वती की धाराएं । सुमनक्षेत्र—फूलों
 का खेत, मन की सुन्दर अभिलाषाएं । कीट—फूल को काट देने वाला
 कीड़ा । वत्स—प्रिय पुत्र राम । अवदात आभा—हंसी की उज्ज्वल शोभा ।
 सुख-सृष्टि—सुख का संसार, सुख का समूह । वाम—टेढ़े । कु-दासी—
 दुष्ट दासी । सतर्क—तर्क रहते हुए । अर्क—सूर्य । एक—अर्थात् कौशल्या ।
 दूसरी—दूसरी रानियां । ११-२०. रोकर—रोककर होना चाहिए ।
 घात—विनाश । मायिक—माया से भरे हुए, जादू के (जो अपना प्रभाव
 डाल रहे हैं) । उद्भांत—भ्रम में पड़ा हुआ, जिसकी बुद्धि नष्ट हो गई हो,
 बावला । निर्बोध—मूर्ख । द्विजिह्वे—री सांपिनी । कीच—कीचड़ ।

कुंचित—टेढ़ा । शासन-नीति—दंड-नीति । सभीति—भय के साथ ।
 २१-४०. कृत्य—काम । भर्तृ—स्वामी । अ-विराम—अविलंब, तुरंत ।
 शयनालय—सोने का घर । उत्क्रान्ति—विप्लव, हलचल, क्षोभ, अशान्ति ।
 संशय—संदेह । विकार—परिवर्तन । प्राण-स्फूर्ति—प्राणों में उत्साह
 भरनेवाला । देव—महाराज, दशरथ । सद्य—दयालु । ४१-५३—
 विरक्त—मुझसे उदासीन । दाह से भरा—जलन परिपूर्ण, जलानेवाला ।
 दुर्गा वेश—दुर्गा के समान भयंकर वेश । अश्रुमय इ०—मानों आंसू गिरा
 रहे थे । करिणी—हथिनी । अमित्र—शत्रु । हृदय इ०—हृदय में ईर्ष्या
 रूपी आग के बढ़ते हुए वेग को सूचित कर रहे थे । अब भी इ०—इतने से
 ही संतोष हो जाय । चुटौली इ०—चोट करनेवाली सांपिनी ।

२ भारतवर्ष का अतीत गौरव

भगोल—भूमंडल । लीलास्थल—क्रीड़ा-भूमि, जहां प्रकृति विविध
 क्रीड़ाएं करती है । फैला—फैला हुआ । भव-भूतियां—संसार के वैभव ।
 कौशल्य—कारीगरियां । आचार्य—विद्वान् और शिक्षक । भव-बंधों—
 संसार के बंधनों को काट देती है । उद्भव—जन्म । उन से—उन जैसे ।
 प्रपूर्ण—भरे हुए । आसीन—बैठे हुए । मीन—मछली । अतिथि इ०—
 अतिथियों को संतुष्ट करनेवाले । आमिष—मांस । श्येन—बाज ।
 परमारथ इ०—ज्यों ही परोपकार करनेवाली समझीं । पुरु—ययाति के
 कनिष्ठ पुत्र जिन्होंने अपनी युवावस्था पिता को दे दी । प्रौढतम—सबसे
 श्रेष्ठ । है एक जन के इ०—एक भीष्म के चरित्र का ही अनुकरण किया
 जाय तो सब गुण एक साथ प्राप्त हो जायेंगे ।

माखनलाल चतुर्वेदी 'एक भारतीय आत्मा'

३ बलिदान

पत्र—कागज । वर्षा-भक्त—वर्षा के प्रेमी । क्या ज्ञात—क्या पता ।

दे चुके प्राण—वे तो अपने प्राण दे चुके । पूर दें—भर दें । शेश—देश होना चाहिए ।

जयशंकर 'प्रसाद'

अभियान—मार्च march । हिमादि—हिमालय पर्वत । तुंग श्रृंग—ऊंचा शिखर । प्रबुद्ध—बोध युक्त । स्वयंप्रभा—अपनी ज्योति से चमकनेवाली । अमर्त्य—अमर । प्रशस्त—सुन्दर । पुण्य—पवित्र । रश्मियां—किरणें । विकीर्ण—फैली हुई हैं । दाह—अग्नि । अराति—शत्रु-सेना रूपी समुद्र में बड़वाग्नि के समाज प्रज्वलित हो, अग्नि के समान प्रज्वलित होकर शत्रुओं को जला दो, जैसे बड़वाग्नि जलकर समुद्र के जल को सुखा देता है वैसे ही तेजस्वी बनकर शत्रुओं के समूह को नष्ट कर दो । प्रवीर—श्रेष्ठ वीर । जयी—विजयी ।

१. क्रंदन-मय—चिल्लाहट से भरा । कुलिश—वज्र, वज्रों के टूटने की सी गर्जना हो रही थी । दिगंत इ०—दिशाओं के कोने बहरे हो गये । २. दिदाह—क्या क्षितिज पर से बादल उठे, या दिशाएं जल उठीं और उनके जलने का धुआं उठ रहा है (बादल धुएं के समान जान पड़ते थे) । सघन—बादलों से छाये । भंभा—दूफान । भटके—प्रबल भोंके । ३. मित्र—सूर्य । वरुण—जल के देवता, खूब वर्षा हो रही थी । घनी—गहरी । कालिमा—अंधकार । स्तर-स्तर—तह पर तह जम गई । पीन—मोटी, गहरी । ४. पंच भूत—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश ये पांच तत्व । मिश्रण—घालमेल, सब गड़भगड़ हो गये । शंपाओं इ०—बिजलियां टूट टूटकर गिरने लगीं । खोया प्रात—प्रभात को, जो हो ही नहीं रहा था मानों कहीं खो गया था । उल्का—मशालें । ज्यों—मानो ।

५. कंपती इ०—पृथ्वी को अधिक कांपती हुई (भयभीत सी) देखकर।
 उतरा हो—नीचे आ गया हो। अशेष—सब-का-सब। आलिंगन—छाती
 से लगाकर धैर्य बंधाने के लिए। ६. सिंधु—समुद्र की तरह फैली हुई
 जलराशि। जाल—फंदा। ७. निःश्वास—लपटें निकलने लगीं।
 संकुचित—सिमटे हुए। उसके—पृथ्वी के। हास—घटती; पृथ्वी क्रमशः
 डूबती जा रही थी। ८. आघात—चपेटे। क्रुद्ध—क्षुब्ध। विचलित—डांवा-
 डोल। व्यस्त—अस्तव्यस्त। ऊभचूभ—घबरायी हुई। समुद्र में डूबती
 हुई पृथ्वी कभी नीचे जाते और कभी ऊपर आते विशाल कच्छप के समान
 जान पड़ती थी। ९. भैरव—भयंकर। जल-संघात—जल-राशि।
 तरल—फैलते हुए। प्रलय-पवन—प्रलयकाल की पवन। आलिंगन—
 मिलन। प्रतिघात—चोट, परस्पर भिड़ंत। १०. बेला—समुद्र का तट।
 निकट आ रही—जल के बढ़ने के कारण। मर्यादा—सीमा। ११.
 करका—ओले। क्रंदन—शब्द। और इ०—और उससे सब कुचल गये।
 तांडव-मय—भयंकर और विनाशकारी। नृत्य—आंदोलन। कब का—
 न जाने कब से, बहुत काल से। १२. पगली—पागल की तरह चलती हुई।
 १३. धुंधले—अस्पष्ट। कातरता से इ०—भाग्य विनाश के जिस मार्ग पर
 ले जा रहा था उसे देखकर साहसहीन होकर निराशा में भर गयी। १४.
 चपलाएं—बिजलियां। गरल—इ० विष भरे (विनाशकारी) बादलों की
 सीधी गिरती हुई धाराओं में बूंदों का एक नया ही संसार बन रहा था।
 १५. चमत्कृत होना—(१) चमकना (२) चौंक उठना। वाड़व इ०
 —वर्षा की धाराओं में चमकती हुई बिजलियां ऐसी जान पड़ती थीं मानों
 विशाल वड़वाग्नि की लपटें टूट-टूट कर रो रही थीं। १६. तल-वासी—तलों
 में रहनेवाले। उतराते—ऊपर आते। विलोडित—मथित। १७. घनी-
 भूत इ०—पवन जम गये। श्वासों इ०—सांस लेना कठिन हो गया।
 चेतना—चेतना विलीन होने लगी। दृष्टि—देखने की शक्ति देखने में

असमर्थ होकर क्षुब्ध हो रही थी। १८. आलोडन—मंथन। बुद्बुद्—बुलबुले प्रलय इ०—प्रलय मचा देनेवाली वर्षा में। ज्योतिरिगण—जुगनू। जगते—चमकते थे। १९. उपकरण—साधन, सूर्य चन्द्र नक्षत्र आदि जिनसे आदि का ज्ञान होता है। चिह्न इ०—चिह्न तक बाकी नहीं बचा।

गोपालशरणासिंह

आरोप—रोपा जाना। हीरक-हार—हीरों का उज्ज्वल हार। जग इ०—लोक-कल्याण की तराजू पर। मानवता-विभव का—मनुष्यता, दया, प्रेम आदि गुणों का।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

१. वासन्ती—वसंत की शोभा। बालारुण—प्रातःकाल का सूर्य। किसलयों के इ०—होठों के समान पेड़ों के नये पत्ते यौवन के मद से लाल आभावाले हो रहे हैं (नये पत्ते सुन्दर लालिमा लिये हुए शोभायमान हैं।) खुलती इ०—खिलती हुई एक कली से दूसरी कली पर। स्पंद—सिहरन। २. पर्यटनार्थ—घूमने के लिए। निश्चल—अटल। सदा—दयावाली। वर्ण—रंग। छंद-बंध—छंदोमयी रचनाएं। प्राकृतिक दान—वे सब प्रकृति के दान हैं। सप्रयास—प्रयत्न करने से। अप्रयास—बिना प्रयत्न से। आते हैं—मनुष्य के पास आते हैं, मनुष्य को प्राप्त हो जाते हैं। ३. कृष्णकाय—काले शरीरवाला। कंकालशेष—जिसके हड्डियां ही बाकी रह गयी हैं। मृत्युप्राय—मरा हुआ सा। बैठा इ०—मानो दैन्य और दुर्बलता शरीर धारण किये बैठे हैं। भिक्षा को—भीख पाने के लिए। तीव्र—तेज जलता हुआ। ज्यों—मानो। पथ पर—चलता हुआ, स्थायी। भलकी आशा इ०—आशा हुई की भीख मिलेगी। दूर्वादल—दूब। तंडुल—चावल, अक्षत। तत्पर—तेजी से। ४. पुए—माल-पुए। इतर—साधारण, तुच्छ। चिल्लाया किया—चिल्लाता रहा।

सुमित्रानंदन पन्त

कौशल—निपुणता, शक्ति। कर्म-निरत हों—कर्म करें। भेद—भाव-भाव। विश्वमूल—विश्व का आधार हो। उपादान—अंग। मुक्त—बंधन-हीन, उन पर नियन्त्रण न हो। श्रेय—कल्याण, वे बातें जो कल्याण करनेवाली हों (प्रिय चाहे न हों), प्रेय—वे बातें जो प्रिय लगने वाली हों (कल्याण करनेवाली चाहे न हों)। एक प्राण—अभिन्न। सहज-स्नेह संस्कृत—स्वाभाविक स्नेह से सुन्दर बना हुआ। मुक्त स्राव—खुला था अबाध प्रवाह, सबको इच्छानुसार प्राप्त हों। एक जीवन—एक ही जीवन भेद-भाव से रहित। गौरव-प्रधान—गौरव-मय समझे जायें।

भगवतीचरण वर्मा

गति के इ०—जिस पर चलते रहने का पागलपन सवार है। संसृति—संसार। लेकर इ०—मनुष्य के विशाल ज्ञान के फलस्वरूप बनी हुई, उसके विशाल ज्ञान का प्रदर्शन करती हुई। उच्छ्वास—उत्साहमय जीवन, उमंगें। चाहें—इच्छाएं। जर्जर—क्षीण शरीरवाली। विवशता—लाचारी। कल—भूतकाल। तंद्रिल—तंद्रा से भरे। सपने—कल्पनाएं। अब—वर्तमान का। स्थिरता—अपरिवर्तनशीलता। ममता—मोह। २. जिसमें भर देती इ०—जिसमें सबरे-शाम धुंआ छाया रहता है, जहाँ का जीवन असफलताओं के आघातों से सदा धुंधला रहता है। लाल—प्यारे। व्यंग—उपहास। ३. दानवता—दुष्टता, दानवों के समान दुष्ट मानव। राजपाट—शासन। सधा हुआ—संभला हुआ। निरामिष इ०—जीवित मांसहीन मानवों का खून पीनेवाला। अस्तित्व—जीवन। विफल—व्यर्थ। कर—लगान, टैक्स। खाली—सूना। अन्तर—हृदय। पशुता का खंड-हर—खंडहरों के समान धरोवाला गांव जहाँ लोग पशु सा जीवन बिताते हैं और जिनका जीवन भी खंडहर सा है। दानवता का—दानव जैसे शोषकों का।

सुभद्राकुमारी चौहान

राजवंशों ने—अर्थात् राजवंशीय लोगों ने। हरबोले—एक प्रकार के नदीजन। मुंहबोली—मुंह से पुकारने की, नाना साहब बचपन में लक्ष्मी बाई को छबीली के नाम से पुकारते थे। वीरता—वीर लक्ष्मीबाई। वैभव—वैभवशाली राजा गंगाधर राव। विरुदावलि—कीर्ति कथा। चित्रा—चित्रांगदा। बुझा दीप—राजा संतान-हीन मर गये। बिरानी—परायी। नागपुर इ०—नागपुर की रानियों के और लखनऊ की बेगमों के। कुटियों में—साधारण जनता में। महलों में—राजवंशवालों में। आहत—चोट खाया हुआ। असमानों में—जो बराबरी के नहीं थे उनमें। बन इ०—स्वतंत्रता नारी बनकर।

महादेवी वर्मा

हिम-हीरक—ओस-बिंदु। समीरण—पवन। दुख की इ०—दुख सहती हुई। ठंडी इ०—दुख के लंबे सांस भरनेवाली जनता को। प्राणों का—प्राणियों का। पतझर—क्रमशः मरण। जीती—जीनेवाली। मधु-परियां—भ्रमरियां। उर-पंजर में—हृदय-रूपी पिंजरे में। कण को—दाने के लिए। जीवन-शुक—जीवन-रूपी सुग्गे को। घन-जाली में—गहरे समूह में। हाथों में—विपत्ति के फंदे में पड़ी हुई। करुणा—दुःख। लज्जा—लज्जाशील व्यक्ति, जिसके लिए अपनी लज्जा को बचाना कठिन हो रहा है। बहलाऊं—दुलराऊं। शैशव को—बचपन को, बच्चों को। घुलता—मिलता हुआ। निस्पंद—गति-रहित, मौन। वीणा से—वीणा के समान जिसके स्वर बिखर गये हैं। बिखरे—अशान्त, व्याकुल, जिसकी शांति बिखर गयी है। मानस—मनों को। रजत—चांदी सी चमकती हुई। मृदु इ०—निद्रा में दिखायी पड़नेवाले रूपहले

सुख के स्वप्नों को । निनिमेष—एक टक देखती हुई (पलक न मारती हुई)
आंखों में । अभिनय—खेल । अम्लान—कभी नहीं मुरझानेवाला ।
अजल—निरन्तर । इसमें—जीवन में । क्रंदन—हाहाकार, रुदन ।

हरिवंशराय 'बच्चन'

संजोने—झकट्टा करने, समेटने । चरणों में—तले में । प्राची—
पूर्व दिशा । श्रान्त—थकी हुई । आलिंगन—मिलन । कान्त—पति ।
दिन की इ०—दिन भर चुपचाप साथ रहनेवाली । जीवन के—जब जीवन
संबंधी सैकड़ों विचार उठते हैं । सिंदूर—सिंदूर के समान लालिमा ।
स्वर्णिमा—सुनहरी । नीड़-अधीर—घोंसलों में पहुँचने को आतुर ।
पर—पंख । श्रृंगार—सजावट । प्रत्याशा—आशा । ध्यान—विचार ।
भरता इ०—अतीव चंचल बना देता है, तेज चलने के लिए प्रेरित करता
है । अंतर—दूरी । सत्ता—अस्तित्व ।

रामधारीसिंह 'दिनकर'

धर्मराज इ०—भीष्म का युधिष्ठिर के प्रति कथन । क्रीत—मोल
ली हुई । जन्मना—जन्म से । मृत्ति—मिट्टी । पोषक रस—पोषण
करनेवाला अन्न-रस । अशंक—आशंका-रहित, निर्भय । मुक्त—
नियन्त्रण-हीन । विकास—उन्नति । उद्भिज-निभ—जमीन से उगने
वाले पेड़-पौधों के समान । चरम—सबसे बड़ा, परम । भुवन—संसार ।
किसी प्रकार—जैसे भी हो । पर्वत—पर्वतों के समान विघ्न-बाधाएं ।
न्यायोचित—जो न्याय के अनुसार मिलना चाहिए । भव—संसार । सुख-
भाग इ०—सबको समान रूप से सुख प्राप्त नहीं होगा । शमित—शान्त ।
संघर्ष—परस्पर की लड़ाई । सम्मिलित हो इ०—एक साथ मिलकर सारे
सुख को भोगना—यह सबसे सीधा मार्ग था । चुराना—छिपाकर भोगना ।

वैयक्तिक भोगवाद से—व्यक्तिगत रूप से, अलग-अलग, सुखों का भोग करने का सिद्धान्त स्थापित हो जाने से । विकीर्ण—फैले हुए । सिमटनेवाला—कम होने वाला । पालिका—पालनेवाली । मृगव्य—शिकारी । अटवी—जंगल, वन । सघन—गहरा । तुंगशृंग—ऊँचे शिखरोंवाले । विद्रुम—प्रवाल—मृगे । प्रेरक—कार्य में प्रेरित करनेवाली । जिज्ञासा—कौतूहल । वक्ष—चतुर, समर्थ । तम में भी—अंधकार में भी खोज निकालने का प्रयत्न करनेवाली । इस भुज—इस सबल भुजा के और इस अन्वेषिणी बुद्धि के । दुर्लभ—दुष्प्राप्य । कोष—खजाना । एक सा—एक समान । तत्त्व—वस्तुएं । आवरण—पर्दा । संघर्षों से—प्रकृति से संघर्ष कर-कर के । श्रम-जल—पसीने से (मेहनत से) । कु-अंक—बुरा लेख । बहा इ०—भौहों से पसीना बहाकर, परिश्रम करके । भाग्यवाद—भाग्य का सिद्धान्त । आवरण पाप का—पाप को छिपाने के लिए है । शस्त्र—हथियार, साधन । भाग—हिस्सा । अर्थ—धन । भाग्यवाद के छल से—भाग्य का बहाना लेकर । वह—अर्थात् भाग्य । श्रमजल दिया—पसीना बहाया, श्रम किया । विजित—मनुष्य के परिश्रम द्वारा वशीभूत प्रकृति से प्राप्त सुख का वह सर्वप्रथम अधिकारी है । न्यस्त—रखा हुआ । भव—संसार । मनुज को—मनुष्य के लिए ।

श्यामनारायण पाण्डेय

शाकल्य—होम की सामग्री । भूख की इ०—अग्नि की भूख साधारण न थी । पत—प्रतिष्ठा, इज्जत । चरु—हविष्यान्न, हवन के लिए पकाया गया अन्न । रावल—चित्तौड़ के राजा पहले रावल कहलाते थे, रतनसिंह के बाद हम्मीर के समय से राणा कहलाये । होता—हवन करने वाले । नरमेध मख—वह यज्ञ जिसमें मनुष्य की बलि दी जाय । मेदिनी—पृथ्वी । योग—मिलन । भूति—वैभव । मधु-मास—वसंत । होता—होम

करनेवाले। रूपवती—सुन्दरी पद्मिनी। आंसुओं की —फूलझड़ी के समान आंसुओं की झड़ी गिराती हुई। हया—लाज। रानी—यौवन का सा जोश। पातकी—पापी। निधन—मृत्यु। विध—विधाता। रव—शब्द। रतन—रावल रत्नसिंह। सजल—आंसुओं से भरे। गंगा—नदी। बली—जली। गढ़—दुर्ग, चित्तौड़। मातृ-कर से—माताओं के हाथों से। लय भांपते थे—प्रलय का आना देखते थे। प्रलय आ रहा है ऐसा अनुमान होता था। यामिनी—रात। रूप-यौवन—रूपवती और युवती नारियों के स्थान पर।
